चुनाव एवं जनमत सर्वेक्षण

सतीश एलिया

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं
संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

चुनाव एवं जनमत सर्वेक्षण

लेखक – सतीश एलिया

प्रकाशक – प्रकाशन विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय
पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय
बी–38, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन–1,
एम.पी. नगर, भोपाल 462011(म.प्र.)
फोन–0755-2554904
ईमेल–publication.mcu@gmail.com

© माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

E-ISBN: 978-81-953948-2-1

चुनाव एवं जनमत सर्वेक्षण

सतीश एलिया

अनुक्रमणिका

क्र.	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
आमुख		3
1.	प्रस्तावना	6
2.	जनमत और प्रोपेगैंडा	11
3.	सर्वेक्षण क्या है?	34
4.	चुनावी सर्वेक्षण का इतिहास	84
5.	भारत में चुनावी सर्वेक्षण	88
6.	जनमत सर्वेक्षण, पूर्वानुमान और विश्वसनीयता	103
7.	भारत में चुनाव सर्वेक्षण की भविष्यवाणियां और हकीकत	132
8.	विशेषज्ञों का नजरिया	189
9.	निष्पत्ति	192
	संदर्भ सूची	197
	लेखक परिचय	198

आमुख

हमारा देश दुनिया का सबसे बडा लोकतांत्रिक देश है। जनता द्वारा जनता के लिए जनता ही इस देश की सरकार चुनती है। जनमत ही सरकारें तय करता है और इसका प्रगटीकरण चुनाव में मत के जरिए होता है। बहुमत के आधार पर राजनीतिक दलों को जनता के लिए सरकार चलाने का मौका मिलता है। हमारे देश में संघीय व्यवस्था है। जिसके तहत केंद्र सरकार और राज्य सरकारें चुनी जाती हैं, जो संविधान में सुपरिभाषित प्रावधानों के तहत अपनी अपनी भूमिका निभाती हैं। लेकिन जनता और राजनीतिक दलों के बीच सबसे बडा सेतु है चुनाव जिसके लिए राजनीतिक दल अपने पक्ष में जनमत तैयार करने का प्रयास करते हैं।

इसके अलावा जनता का भी अपना मत सरकारों के कामकाज और उनके असर के आधार पर बनता रहता है। हम चुनावों के पहले कई कई दौर के जनमत सर्वेक्षणों के अनुमान समाचार पत्रों और मीडिया के अन्य माध्यमों में पढ़ते, सुनते देखते हैं। यह सर्वेक्षण और उनके अनुमान वास्तविक नतीजों से कितना मिलते हैं! यह सवाल हर बार चुनाव के वक्त न केवल अध्येताओं के सामने होता है, बल्कि जनता के बीच भी चर्चा का विषय बनता है।

पत्रकारिता और मीडिया की अन्य विधाओं के विद्यार्थियों के लिए इस विषय को आद्योपांत जानना बहुत जरूरी है कि उन्हें अध्ययन पूरा होने के बाद पत्रकारिता के दौरान इस क्षेत्र में काम करने का अवसर सामने होगा। जनमत सर्वेक्षण और चुनाव नतीजों के तुलनात्मक अध्ययन जैसे गंभीर विषय पर वरिष्ठ पत्रकार सतीश एलिया ने माखनलाल चतुर्वेदी राष्टीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के लिए शोध पुस्तक का लेखन किया है। वे इस विश्वविद्यालय के पहले बैच 1991-92 के विद्यार्थी हैं और बीते तीन दशक से राजनीतिक और प्रशासनिक रिपोर्टिंग में सिद्धहस्त पत्रकार के तौर पर स्थापित हैं।

उन्होंने लगातार सात लोकसभा, छह विधानसभा चुनावों के अलावा पंचायत एवं नगरीय निकाय चुनावों की न केवल मैदान रिपोर्टिंग की है, बल्कि एक राजनीतिक संपादक के तौर पर विभिन्न बहुप्रकाशित अखबारों में लगातार समीक्षाएं की हैं। वे जनमत सर्वेक्षणों, चुनाव नतीजों के विश्लेषण में माहिर पत्रकार के तौर पर जाने जाते हैं। इस शोध पुस्तक में श्री एलिया ने जनमत, जनमत सर्वेक्षण का इतिहास, सामाजिक शोध, सर्वेक्षण के तरीके, विश्लेषण, निष्कर्ष के तरीकों का तो विस्तार से लेखन किया ही है, उन्होंने 1996 से 2019 तक के लोकसभा चुनावों के चुनावी जनमत सर्वेक्षणों तथा चुनाव नतीजों के बरअक्स जनमत सर्वेक्षण विधा की समीक्षा भी की है।

मुझे विश्वास है कि उनकी यह शोध पुस्तक न केवल हमारे विवि के विद्यार्थियों के लिए बल्कि अन्य सभी महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों के राजनीति शास्त्र, समाज समाज शास्त्र तथा अन्य विषयो के विद्यार्थियों तथा पत्रकारों के लिए भी अत्यंत उपयोगी साबित हो सकेगी, मैं ऐसी कामना करता हूँ।

प्रो. के.जी.सुरेश
कुलपति
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार
विश्वविद्यालय भोपाल मप्र

अध्याय 1

प्रस्तावना

किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र में चुनाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है। चुनाव के जरिए देश का जन अपने लिए सरकार चुनता है। हमारा देश भारत विश्व का सबसे विशाल लोकतंत्र है। हमारे यहां चुनाव राजनीतिक दलों के लिए युद्ध के मैदान से कम नहीं होता और राजनीति का यह महाभारत जनता के लिए महायज्ञ होता है। इस हवन में मतदाता अपने मत की हवि देकर राष्ट्र कल्याण की जिम्मेदारी चुने हुए जनप्रतिनिधियों को सौंपता है। चुनाव के पहले का, चुनाव के दौरान का और चुनाव के बाद का परिदृश्य सर्वथा भिन्न होता है। लेकिन यह तीनों ही चरण आपस में गुंथे हुए होते हैं। इसी समग्र परिदृश्य से निकलता और निखरता है देश चलाने वाली सरकार का स्वरूप। इतिहास गवाह है कि ब्रिटिश सरकार की गुलामी से आजादी के बाद, सात दशकों में हमारा लोकतंत्र लगातार परिपक्व होता चला गया। हाल के दौर में हुए चुनाव भी इसकी पुष्टि करते हैं कि जनतंत्र में जन ही सबसे महत्वपूर्ण है और वह देश की राजनीतिक चेतना में झंकृत भी हो रहा है। चुनाव के नतीजों में जनता की आवाज साफ तौर पर सुनाई देती है। भारत का जन उन दलों को नकार देना जानता है जो जनता की सत्ता को नकार देना चाहते हैं। पहली लोकसभा के गठन से लेकर सोलहवीं लोकसभा के

गठन और सत्ता आरोहणों की समग्र प्रक्रिया में मुख्य भूमिका जनता की ही रही है। जनमत ही लोकतांत्रिक व्यवस्था की बुनियाद है। मगर ये भी उतना ही सच है कि राजनीतिक दलों के बिना भी लोकतंत्र अधूरा है बल्कि यूं भी कहा जा सकता है कि बिना राजनीतिक दलों के लोकतंत्र नहीं हो सकता।

लोकतंत्र में राजनीतिक दल और जन के बीच में सेतु है प्रेस यानी मीडिया। जनतंत्र में जन और तंत्र के बीच खडा प्रेस लोकतंत्र के तीन संवैधानिक आधारों विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के अलावा अघोषित चौथा स्तंभ माना जाता है। संविधान में नागरिकों को मिले अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार की शक्ति ही प्रेस की भी शक्ति है। इस शक्ति से यह चौथा स्तंभ चुनाव के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह जनता को राजनीतिक रूप से जागृत करता है और राजनीतिक दलों की इच्छाओं, कर्तव्यों और मतंव्यों से रूबरू कराने के अलावा वह भी सामने लाता है, जो घोषित तौर पर सामने नहीं लाया जाता। चुनाव के पहले, चुनाव के दौरान और उसके बाद भी, समाचार जगत सत्ता समीकरणों, संघर्षों और जुगतों का दर्पण बन जाता है। उसी के माध्यम से जन ये सारे समीकरण, संघर्ष और जुगतें देख पाता है। लेकिन बार बार यह सवाल उठता है कि क्या प्रेस अपनी यह भूमिका ठीक से निभा पा रहा है? चुनाव के पहले, दौरान और बाद में प्रेस की भूमिका आकलनों, विश्लेषणों और जनमत सर्वेक्षणों के जरिए जनता और राजनीतिक दलों के सामने आती है।

कई दफा इन पर भी किसी खास राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित होने या किसी खास हितसाधन की पूर्ति के आरोप लगते हैं। तो क्या होते हैं जनमत सर्वेक्षण? इनका इतिहास क्या है? और इनकी प्रक्रिया कैसी होती है? क्या जनमत सर्वेक्षण और चुनाव नतीजों में कोई साम्य होता है? साम्य होता है तो कैसे? और नहीं होता तो उसके क्या कारण हो सकते हैं? इन सवालों के जबाव तलाशने के लिए जनमत सर्वेक्षण का अध्ययन और विश्लेषण पर हम अगले अध्यायों में विस्तार से चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रेस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और जिम्मेदारी भरी होती है। प्रेस को मिली स्वतंत्रता भी इसी वजह से है। कहा जाता है कि समाचार पत्र यानी मीडिया जन आकांक्षाओं का प्रतीक होता है और इसे जनता की आंकाक्षाओं और विचारों का दर्पण कहा जाता है। लेकिन क्या वे यह भूमिका ठीक से निभा रहे हैं? यह सवाल बार बार उठते हैं और लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसे सवाल उठना स्वाभाविक भी है। कई बार यह कहा जाता है कि प्रेस के दर्पण की छवियां हमेशा असली छवि नहीं होती। यह दर्पण कई बार हंसी घर में लगे कई कोणों और लैंसों वाले आइनों जैसी छवि भी पेश करता है। इससे गलत छवि भी उभरती है या फिर छवि बनती या बिगड़ती भी है। कभीये हास्यापद छवि प्रस्तुत करता है तो कभी कभी विकृत छवि। मीडिया समूहों पर यह आरोप भी लगते

हैं कि वे किसी दल विशेष की ओर झुकाव रखते हैं और इसीलिए स्वतंत्रता और मत निर्माण की जिम्मेदारी को निभाने के बजाए दल विशेष के लिए काम करने लगते हैं।

यहां हम चुनाव के पहले किए गए जनमत सर्वेक्षणों और चुनाव के नतीजों की तुलना के जरिए दरअसल समाचार पत्रों की जनतांत्रिक भूमिका के मूल सवाल की ओर इशारा करना चाहते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव ही वह तरीका है जब जन खुद को मतदान के जरिए अभिव्यक्त करता है। उसका मानस अपने आसपास, राष्ट्र की समस्याओं और राजनीतिक उथलपुथल के बारे में सतत विचार करता रहता है। उसका अपना मत होता है जिसे व्यक्त करने का सबसे अहम अवसर मतदान ही उसके पास उपलब्ध है। चुनाव आते ही यह चिंतन प्रक्रिया तेज हो जाती है। चुनाव में चुनने की स्वतंत्रता तो होती है, लेकिन इस चुनाव को कई तत्व प्रभावित करते हैं। इनमें प्रचार, प्रोपेगैंडा और कई छोटे बड़े कारक शामिल होते हैं। चुनाव से पहले जन क्या सोचता है, इसे जानने की कोशिश जनमत सर्वेक्षण के जरिए की जाती है। जनमत सर्वेक्षण की पूरी प्रक्रिया और विश्लेषण के अलावा हम उनकी स्वीकार्यता और भूमिका को भी समझेंगे। पत्रकारिता के विद्यार्थियों, पत्रकारों, राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वालों और अध्येताओं के लिए यह जानना जरूरी है कि चुनावी सर्वेक्षण और पूर्वानुमान कैसे चुनाव प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन चुके हैं और उन्हें कैसे ज्यादा पारदर्शी और ज्यादा विश्वसनीय बनाया जा सकता है। मतदाता या नागरिकों के

लिहाज से उन्हें यह जानना जरूरी है कि कैसे राजनीतिक दल और उनके लिए काम करने वाली एजेंसियां मतदाताओं को कैसे उनके मतदान को लेकर चुनाव के दौरान काम करती हैं और वे अपना वोट देने का फैसला करते हैं, उसे कौन कौन से कारक, किस किस तरह से प्रभावित करते हैं। मतदाता का जागरुक होना और सही चुनाव का फैसला ही असल मकसद होना चाहिए।

अध्याय 2

जनमत और प्रोपेगैंडा

लोकतांत्रिक व्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द है जनमत। एक तरह से यह लोकतांत्रिक प्रणाली की बुनियाद है। जनमत शब्द पर ही गौर करें तो यह जन और मत से मिलकर बना है। जन से तात्पर्य लोगों से अर्थात बहुत से व्यक्तियों या समूह से है और मत का अर्थ है राय। यदि हम जनमत को आमराय समझें तो शायद ठीक होगा। क्योंकि आम राय का मतलब ज्यादातर लोगों की सहमति होती है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि एक विषय पर बहुत से व्यक्तियों के विचार तथा प्रतिक्रियाएं होती हैं, उन्हें ही जनमत कहा जाता है। जनमत में मनोवैज्ञानिक और सामाजिक तत्वों का समावेश होता है। सामाजिक कल्याण के विरुद्ध जाने वाले मत को जनमत नहीं कहा जा सकता है। इस तरह कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में जो जनकल्याणकारी है, उसके पक्ष में जनता की राय ही जनमत है।

जन

आमतौर पर जन का मतलब व्यक्ति से लगाया जाता है। लेकिन यहां जन का मतलब एक व्यक्ति से नहीं है। जन से तात्पर्य किसी एक समूह से है जो किसी विषय पर अपना विचार रखता है। यह समूह छोटा या बडा हो सकता है। जब रूचियां एक हो जाती हैं तब जनमत निर्मित

हो जाता है। उनमें एकत्व की भावना का जन्म हो जाता है। जॉन डेवी के अनुसार- जन व्यक्तियों का एक समूह है, जो किसी विशेष क्रिया या विचारों के फलस्वरूप प्रभावित होते हैं। अर्थात प्रत्येक प्रकरण या समस्या पर रूचि के अनुरूप अपने स्वतः के जनमत का निर्माण होता है।

मत

मत शब्द में एक विश्वास निहित होता है। विश्वास कई प्रकार के होते हैं। कुछ बिना अनुभव के स्वीकार कर लिए जाते हैं, क्योंकि उनमें स्त्रोत की प्रामाणिकता होती है जो हमें विश्वास दिलाती है। कुछ विश्वास प्रमाण के आधार पर स्वीकार होते है। मत वे विश्वास हैं जो किसी विवादास्पद विषय के बारे में होते हैं। किसी सार्वजनिक मामले के बारे में किसी व्यक्ति का दृष्टिकोण उसके अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता है। यह एक ऐसी स्थिति है, जहां मत और अभिवृत्ति में समानता हो जाती है। इस प्रकार मत एक ऐसी मौखिक अनुक्रिया है, जो किसी विवादास्पद विषय के प्रति किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति का संकेत देती है।

जनमत विद्वानों के नजरिए से

व्यक्तिगत राय और सामाजिक संगठन के आधार पर जनमत की परिभाषा को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पहली श्रेणी के विचार के अगुआ अल्बर्ट बैन डिक हैं जिन्होंने 19 वीं सदी में न्यायिक पक्ष को आधार बनाया। इस आधार पर जनमत को परिभाषित करते हुए डिक कहते हैं, "जनमत साधारण भाषा में उस विश्वास का नाम है, जो

बहुत से व्यक्तिगत मानकों का है"। समाजशास्त्री चॉर्ल्स हार्टन कुले जनमत को अलग ही तरह से परिभाषित करते हैं। उनके मुताबिक, "जनमत व्यक्तिगत निर्णयों का औसत मात्र नहीं है, बल्कि एक संगठन है, आपसी समझबूझ का प्रभाव तथा सहयोगी संचार यानी कोऑपरेटिव कम्यूनीकेशन का प्रोडक्ट है"।

जर्मन दार्शनिक फर्डिनेन कोनीज का विचार है कि, "जनमत एक प्रकार से भावनाओं की एकीकृत सहमति है, जिसे कोई व्यक्ति समूह या विशेष, स्वीकृत या अस्वीकृत कर देता है"। जनमत को लेकर दो विचारधाराएं हैं। पहली श्रेणी के लोग मानते हैं कि जनमत एक सामाजिक संगठन है या व्यक्तियों का सामूहिक मत है। दूसरी श्रेणी के लोग जनमत शब्द को किसी संदर्भ विशेष खासकर राजनीति के संदर्भ में लेते हैं। वे इसे विस्तृत दायरे में लेते हैं। टेंटस्पियर के अनुसार "जनमत वह मत या चिंता का विषय है जिसके बारे में व्यक्ति देश में स्वतंत्र अथवा सार्वजनिक रूप से, सरकार से बाहर रहते हुएऔर ये जानते हुए, कि यह राय सरकार को प्रभावित करेगी या उसके कार्यों का निर्धारण करेगी, सरकार की संरचना का निर्माण करता है"। समाज विज्ञानी मानते हैं कि जनमत का प्रभाव अर्थशास्त्र में, विज्ञान में, धर्म में, तथा इसी तरह के अन्य विषयों में होता है। इसका असर ताकतवर भी हो सकता है और कमजोर भी।

कटलप का मत है, "जनमत एक अभिमत है, जो समय के साथ उत्पन्न होता है। उसमें विचारों की एकरूपता

होती है। वह किसी बहस या किसी विशेष प्रकरण पर मत होता है तथा अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है"। दूसरी तरफ हेन्ससी का मानना है कि "किसी प्रकरण पर जनमत एक सामूहिक मत या दृष्टिकोण है, जिसका अनुमान किया जा सकता है। यह एक प्रकरण पर रूचि रखने वाले सभी लोगों का समूह होता है"। राजनीतिक विश्लेषक वॉल्टर लिप्पमेन ने अपनी किताब पब्लिक ओपिनीयन और दि फैंटम पब्लिक में साफ तौर पर यह मत व्यक्त किया है कि "आम जनता सूचनाओं एवं सच्चाई से अनभिज्ञ होती है और इसलिए वो सही फैसले लेने में असमर्थ होती है। जनता तक जो सूचना पहुँचती है उसमें कई बार मिलावट होने की संभावना भी होती है। इसलिए जनता के निर्णय पर विश्वास करना मुश्किल है"। हॉलांकि लिप्पमेन के इस कथन का उस समय के कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जॉन डूई ने अपनी किताब दि पब्लिक एंड इट्स प्राब्लम्ज के जरिये जोरदार खंडन किया। डूई ने लिखा है कि "केवल वोट का अधिकार देना लोकतंत्र के लिए पर्याप्त नही है बल्कि एक स्वस्थ वातावरण में पूर्ण रूप से विचार विमर्श कर विशेषज्ञों की राय एवं जबाबदेही को सामने रखकर राजनीतिक पार्टी के लिये जनमत का निर्माण हो, तभी वह सही मायनों में स्वस्थ लोकतंत्र है''। डूई ने ये भी लिखा है कि "जनता एक निष्क्रिय प्राणी नही है जो मीडिया के संदेशों को सिर्फ ग्रहण करता है बल्कि जनता अपनी तर्कशक्ति और बुद्धि से अपने लिए उचित निर्णय लेने में सक्षम है"।

जनमत के बारे में सबसे पहली अवधारणा संभवतया यूनानी दार्शनिक अरस्तु की है। प्राचीन यूनान में बहुत पहले ही लोकतंत्र की स्थापना हो चुकी थी। वहां सत्ता हासिल करने के लिए जनमत निर्माण करना जरूरी होता था। और जनमत निर्माण के लिये जरूरी था कि जनता को अपने पक्ष से प्रभावित किया जाये। उस दौर में इसका एक ही तरीका था, भाषण, जो राजनेता को जनता से सीधे जुड़ने का अवसर देता था। अरस्तू के अनुसार "हर प्रकार के श्रोता समूह को प्रभावित करना संभव है। सिर्फ उस समूह की आवश्यकता एवं भावनाओं का खयाल वक्ता को रखना चाहिये"।

जनमत का महत्व

जैसै-जैसे प्रकरण बदलते जाते हैं, जनमत भी बदलता रहता है। लोग एक परिस्थिति, एक समस्या को समझते हैं। इसके बाद उस पर क्या होना चाहिए, इस पर विचार करते हैं। वे उस समस्या का हल खोजते हैं। वे तथ्य खोजते हैं, समस्या पर सामूहिक बातचीत या बैठकें होती हैं। वे विकल्पों पर भी चर्चा करते हैं और नीति का निर्धारण करते हैं। फिर नीति के लिए कार्यक्रम पर भी चर्चा करते हैं और आखिर में उस पर अमल के लिये जोर डालते हैं। दूसरे समूह भी इस प्रक्रिया में शामिल होने के लिए आकर्षित हो सकते हैं। इस तरह सतत प्रक्रिया में व्यापक जनमत का निर्माण होता है। यही जनमत एक तरह से

कल्याणकारी विषयों पर जनता की राय के रूप में सामने आता है।

जनमत के प्रारंभिक आधार

जनमत को उसकी प्रबल शक्ति व्यक्ति के मत के आधार पर प्राप्त होती है। उसे व्यक्तियों के समूह में शक्ति प्राप्त होती है। व्यक्ति और समूह का मत ही जनमत का स्त्रोत होते हैं। जनमत की खोज में आनुवांशिकता, पर्यावरण, प्रेरणा तथा व्यक्ति के व्यवहार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। व्यक्ति जिस बात में या राय में विश्वास जताता है, उसमें सत्य, नैतिकता और आधार संबंधी धारणा ही जनमत के प्रमुख कारक होते हैं।

जनमत निर्माण

जनमत निर्माण के लिए तीन प्रमुख तत्व आवश्यक हैं संचार, मुददे तथा जन। यहां यह आवश्यक नहीं है कि जनमत निर्माण के लिए जन माध्यम उपलब्ध ही हों। प्राचीनकाल में अंतर-वैयक्तिक संचार यानी इंटर पर्सनल कम्युनीकेशन से जनमत निर्माण किया जाता था। मुद्दों से तात्पर्य उन विषयों से है, जिनका जनमानस पर प्रभाव पड़ रहा है। यह मुद्दे चर्चा का विषय बन जाते हैं। और तीसरा तत्व यानि जन से तात्पर्य है, वो व्यक्ति, जो किसी विशिष्ट मुददे पर केंद्रित होते हैं। उन सभी की उसी विषय में रूचि होती है और वे उससे कुछ सीखते हैं। संचार की भूमिका यहां व्यक्तियों के बीच संपर्क स्थापित करना है। लोग एक

दूसरे के संपर्क में आते हैं तो जनमत का निर्माण होने लगता है।

जनमत निर्माण के चरण

व्यक्ति की किसी मुददे पर राय बनती है। इसकी अभिव्यक्ति संचार के जरिए होती है। अगर यह अभिव्यक्ति शब्दों, क्रियाओं या भाव भंगिमाओं से सामने आए तो यह अभिमत बन जाता है। यदि अभिव्यक्ति न हो तो राय जनमत निर्माण में कोई भूमिका नहीं निभाती। जब कुछ व्यक्तियों की एक ही मुददे पर अभिव्यक्ति बन जाएगी तो वह तभी जनमत का रूप लेगी जब वह मतदान या साक्षात्कार में प्रकट हो।

सामान्य तौर पर व्यक्ति किसी मुददे पर विचार अंतर-वैयक्तिक यानी इंट्रा पर्सनल या आमने सामने के संचार में प्रकट करते हैं अथवा अपने समूह में प्रकट करते हैं। एक परिवार के सदस्य, पडोसी या काम में लगे समूह एक मुददे पर ठोस सहमति बनाते हैं। जनमाध्यमों के जरिए या अंतरवैयक्तिक संचार यानी इंट्रा पर्सनल कम्युनीकेशन के जरिए जानकारियां या विचार को जनसमूह तक पहुंचाते हैं और वे अपने विचार के जरिए उस विचार विशेष के प्रति सहमति व्यक्त करते हैं। वे इस विचार को विश्वास के साथ प्रकट करते और फैलाते हैं। वे ऐसे विचारों को स्वीकृत या अस्वीकृत करते हैं या फिर चुप रहना पसंद करते हैं।

जब किसी दल विशेष या अनुयायी समर्थक के विचारों को सहभागिता मिलती है तो उनमें हम की भावना अस्तित्व में आती है। विचारों का यह संगठन वलय प्रक्रिया के रूप में विकसित होता है। यह तब तक विकसित होता रहता है, जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति हम की भावना से सहमति नहीं जताने लगता।

जनमत में यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चरण पूरा हो। प्रत्येक प्रकरण में स्थितियां भिन्न हो सकती हैं। जनमाध्यमों के जरिए या अंतर वैयक्तिक संचार में किसी महत्वपूर्ण मुददे पर राय का निर्माण उस मुददे और उसके सामाजिक पर्यावरण पर भी निर्भर करता है। जिन व्यक्तियों का अपना समूह नहीं होता, वे ज्यादातर सूचनाओं और राय के निर्माण में जनमाध्यमों पर निर्भर होते हैं। जिनका अपना व्यक्तिगत समूह अथवा घनिष्ठ सामाजिक समूह होता है, उनमें सूचनाओं और राय का निर्माण बातचीत या अंतर वैयक्तिक संचार के जरिए होता है। किसी भी व्यक्ति को मुददों की जानकारी टीवी, रेडियो प्रसारणों, परिचर्चाओं या मित्रों के साथ बातचीत से मिल सकती है। वे अधिक जानकारी समाचार पत्रों से ले सकते हैं। व्यक्ति की राय पर उसकी रूचियों का, मूल्यों का और सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों का प्रभाव पड़ सकता है। व्यक्ति की अभिवृत्तियां बनने और अभिव्यक्त होने की प्रक्रिया में वह उन व्यक्तियों अथवा समूहों के विचार जानने की चेष्टा भी करता है जो उसके संपर्क के दायरे में होते हैं। अक्सर उसकी अभिवृत्तियां और विचार उन व्यक्तियों अथवा समूहों के जैसे ही हो जाते

हैं।अंतर वैयक्तिक संचार या परस्पर बातचीत के जरिए एक समूह सामान्य तौर पर ऐसे विचार स्थापित कर लेता है, जिसमें सभी की स्वीकृति होती है। जिसकी असहमति होती है, वे या तो सामान्यतया चुप रहते हैं या फिर समूह छोड़ देते हैं।

जब किसी मुददे पर जन माध्यम के जरिए ध्यान केंद्रित किया जाता है, तो उस मुददे पर व्यापक रूप से चर्चा को प्रोत्साहन मिलता है। तब जनमत की बड़े समूहों में चर्चा होती है। मगर ये आवश्यक नहीं कि जन माध्यम सभी विषयों पर चर्चा करके जनमत निर्माण कर सकें। कुछ संवेदनशील विषय ऐसे भी हो सकते हैं, जहां ऐसी व्यापक चर्चा अथवा रायशुमारी की गुंजाइश ही नहीं होती।राजनीति शास्त्री बर्नाड सी कोहेन का मत है कि "विदेश नीतियों के सवालों पर जन माध्यम बहुत सफल नहीं हैं, क्योंकि विदेश नीति पर अक्सर जन माध्यमों पर यह नहीं बताया जाता कि क्या विचार किया जाए"।

जनमत के प्रकार

जनमत दो प्रकार के होते हैं-

1. स्थिर-यह हमेशा एक सा रहता है।
2. परिवर्तनशील- यह बदलता रहता है।

स्थिर जनमत- स्थिर जनमत से तात्पर्य है की किसी बात को लेकर जनता में एक ही मत रहता है तथा वह किसी भी स्थिति में बदलता नहीं है। उदाहरण के तौर पर हमारी

संस्कृति में राम और कृष्ण को अवतार माना जाता है। इस तरह के विचार में कभी परिवर्तन नहीं हो सकता।

परिवर्तनशील जनमत- समय तथा परिस्थिति के आधार पर जनमत भी बदलते रहते हैं। इस तरह के मत में ठहराव तब तक ही संभव है, जब तक उस प्रक्रिया में अपने मत अनुसार कार्य होते रहते हैं। उदाहरण के लिए चुनाव में जनता जिस दल को वोट देती है, यदि वह जनता के हित में कार्य नहीं करता तो अगले चुनाव में जनता उस दल के खिलाफ अपना मत देती है। जब बहुमत में किसी बात को कहा जाता है, तो उसे जनमत कहा जाता है। लारेंस पावेल के अनुसार- जनमत में जन तथा मत दोनों शब्दों का अपना अपना महत्व है। बहुमत के अलावा और भी कई चीजें होती हैं, जिनके अभाव में जनमत नहीं बन सकता। जनमत के लिए दो बातें बहुत जरूरी हैं-

1. लोगों की संख्या में बहुमत
2. बहुमत की प्रभावशीलता

विशेषज्ञों का कहना है कि जनमत सामाजिक विचार को स्पष्ट करता है। जनमत एक सामाजिक निर्णय है। किसी प्रश्न पर, जो सामान्य महत्व का है, और उस पर गंभीरता से निर्णय लिया जा रहा है, तो उस पर जनमत बन सकता है, लेकिन उस फैसले में भावुकता को विशेष स्थान नहीं मिलना चाहिए। भीड़ और हिंसा की कार्रवाई जनमत नहीं है।

जनमत में यह शामिल नहीं होते:

1. भीड़ की कार्रवाई

2. हिंसा की कार्रवाई

जनमत, भीड़ तथा समूह में अंतर

1. जनमत में सभी लोग किसी न किसी तरह चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं, लेकिन भीड़ में यह बात नहीं होती। दूसरे भीड़ में कुछ विषेष लोगों का ही प्रभाव होता है और बाकी लोग उनके पीछे पीछे चलते हैं।
2. जनमत का किसी मत पर भिन्न भिन्न निर्णय हो सकता है, लेकिन भीड़ में लगभग सभी लोगों का एक समान मत होता है चाहे वो सकारात्मक हो या नकारात्मक। उदाहरण के लिए अयोध्या में विवादित ढांचे का गिराया जाना।
3. जनमत में लोग आमतौर पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मसले पर किसी न किसी तरह ध्यान देते रहते हैं, लेकिन भीड़ में इस तरह से सोच का प्रश्न नहीं उठता।

जनमत और आक्रोश

जब किसी मसले पर समाज का एक वर्ग अचानक असंतुष्ट हो जाता है, और भिन्न भिन्न तरीकों से अपना रोष प्रकट करता है तो उसे हम जनाक्रोश अर्थात जनता का रोष या गुस्सा कहते हैं। यह एक प्रकार की प्रतिक्रिया यानी बायप्रोडक्ट है, जबकि जनमत एक उत्पाद या प्रॉडक्ट है। अतः जनमत जनाक्रोश से भिन्न है। वाल्टर किमेन का कथन है- "संचार से हम वह चीज भी प्राप्त कर लेते हैं, जो

हमारी पहुंच के बाहर है"। हम जिसको देख रहे हैं, वह विश्व का छोटा सा हिस्सा है। हमारे दुनिया में तमाम किस्म के रिश्ते होते हैं। उनकी जो छवि दिमाग में हम बनाते हैं, उसके अलावा उनकी एक वास्तविक छवि भी होती है, मगर दोनों कभी एक समान नहीं होतीं। इन दोनों में बहुत अंतर होता है। फिर भी हर दिमाग में एक चित्र बनता है। वहीं दूसरी ओर एक जनमत है जो सभी लोगों के मस्तिष्कों से उठते विचारों के अनुरूप होता है।

जनमत और संचार

जनमत और संचार के बीच घनिष्ट संबंध है, और दोनों ही एक दूसरे पर प्रभाव डालते है। जनमत बनाने में संचार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। जब किसी विषय पर समाज में व्यक्ति से चर्चा शुरू होती है और वह व्यक्तियों और समूहों के रूप में आगे बढ़ती है तो धीरे धीरे वह जनमत की तरफ अग्रसर होती है। चर्चा शुरू होकर विस्तारित होना संचार के बिना संभव नहीं है। इस तरह जनमत तैयार होने में संचार की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। संचार के कई तरीके इस प्रक्रिया में भागीदार बनते हैं। लोगों के बीच बातचीत और विमर्श के सभी अवसर और माध्यम संचार हैं।

जनमत का संचार पर प्रभाव

इस पर बहुत ही कम शोध हुए हैं। यह पता करना बहुत ही कठिन है कि जनमत संचार पर कितना और कैसे

असर डालता है। हम संचार पर जनमत के प्रभाव को जानने के लिए निम्न बातों को अध्ययन कर सकते हैं।

1. जनमत किस सीमा तक संचार के संपर्क में हैं।
2. जनमत किन किन तरीकों से संचार पर प्रभाव डालता है।
3. मीडिया किस तरह की खबरें दे रहा है?

संचार का जनमत पर प्रभाव

बेरेलसन के अनुसार- आम तौर पर लोग यही कहते हैं कि जनमत पर संचार का प्रभाव होता है। इसका क्या प्रभाव होता है, वह संचार के स्वभाव पर निर्भर करता है। माध्यम जितना व्यक्तिगत होगा और जितना लोगों से दूर होगा, उसका उतना ही कम असर होगा। अगर लोगों के मत को बदलना है तो लोगों से व्यक्तिगत संपर्क करना होगा। माध्यम का प्रभाव सीधे लाखों लोगों पर नहीं होगा। इसलिए यह कार्य विचार नेतायानि ओपिनियन लीडर तथा इस तरह के प्रमुख लोगों से प्रभावी ढंग से कराया जा सकता है। संचार का जनमत पर प्रभाव निम्न बातों पर निर्भर करता है :

1. **मुद्दे**-संचार का जनमत पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह मुद्दों के स्वभाव पर निर्भर करता है। जो मुद्दे नए होंगे, उनका असर ज्यादा होगा तथा जो पुराने होंगे उनका असर कम होगा, लेकिन मुद्दों को बदलना बहुत कठिन होगा।

2. **स्थितियां-** जनमत पर स्थितियों का भी बहुत असर होता है, किन स्थितियों में संचार हो रहा है। घटना को मीडिया अलग अलग नजरिया से देखता है। एक ही बात को अलग अलग मीडिया अलग अलग ढंग से पेश करेंगे। इन स्थितियों में घटना का प्रभाव कम हो जाएगा। यदि घटना स्थल के पास मीडिया का एकाधिकार है, तो मीडिया का प्रभाव बढ़ जाएगा।
3. **व्यक्ति-** जनमाध्यम आम लोगों में रूचि पैदा करते हैं और कुछ मुद्दों पर लोगों की रूचि बनाते हैं। उन मुद्दों पर चूंकि लोगों को निर्णय लेना होता है अतः जनमाध्यम लोगों में निर्णय की क्षमता का विकास करते हैं।
4. **प्रभाव-** इसे व्यापक रूप में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि मीडिया यानी टीवी, रेडियो या अखबार की रिपोर्ट आदि में क्या बदलाव दिखता है, इसका विश्लेषण करने पर समूह या व्यक्तियों की अभिवृत्तियों और व्यवहार में क्या परिवर्तन आया?

प्रोपेगैंडा

प्रोपेगैंडा संचार के मौखिक या अमौखिक रूप से व्यक्ति या व्यक्तियों का प्रेरणा, विश्वास, मान्यताओं या अभिवृत्तियों में असरकारक प्रभाव डालने का प्रयास है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द प्रोपेगेट से हुई है। ये शब्द

अन्य भाषाओं में शब्दार्थ के कुछ परिवर्तन के साथ प्रयोग किया जाता है।

सन 1633 में मिशनरी के कामों के प्रचार के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया। इस अवधारणा का सबसे पहले उपयोग मानवीय संबंधों को स्थापित करने के लिए आठवें पोप ने 1633 में किया। इसका मकसद रोमन कैथोलिक चर्च के विश्वासों का प्रचार करना था। इस संदर्भ में प्रोपेगैंडा यानी प्रचार का तात्पर्य केवल उपदेशात्मक था। प्रोपेगैंडा का अभिप्राय लोगों के विश्वासों एवं विचारों में परिवर्तन लाना तथा उसे क्रियात्मक रूप में प्रेषित करना था। इस प्रकार यह प्रचार शक्ति एवं सामाजिक नियंत्रण का एक प्रारूप है। शब्दों एवं प्रतीकों का विचारपूर्ण प्रयोग व्यक्ति के मत एवं अभिवृत्तियों में परिवर्तन तथा उसे कार्य रूप में परिणित करना है।

हेरोडोटल ने इसे एंथेस राज्य का किराए का प्रेस अभिकरण कहा है। आक्टोवियस एवं मार्क एंथोनी ने रोम समुदाय का परिचालन करने में इसका उपयोग किया था। गुएल्स एवं पिनलाइन्स के युद्ध में पोप को इसलिए विजय प्राप्त हुई थी, क्योंकि उन्होंने उस प्रभावोत्कारक तकनीक का प्रयोग किया था, जिसे प्रचार कहते हैं। स्पेन के राजा फिलिप एवं इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ ने एक दूसरे के अनुयायियों के आधारभूत विश्वासों को बदलने में प्रचार या प्रोपेगैंडा का उपयोग किया था।

17वीं-18वीं शताब्दी में फ्रांस एवं ब्रिटेन में लोगों में जनतांत्रिक विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए पुस्तिकाओं का

उपयोग किया गया था। नेपालियन बोनापार्ट ने अपनी वीरगाथाओं को प्रकाशित कराया था ताकि उसका यश सर्वत्र फैल सके। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में संयुक्त जर्मनी में बिस्मार्क ने जर्मनी के विचारों के प्रसार में खुद को एक कुशल तकनीक के जरिये प्रस्तुत किया था। बिस्मार्क ने ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया तथा इंग्लैंड को पूरे यूरोप में बदनाम करने में सहयोग दिया था।

एफ.ई. लेम्बले ने द प्रोपेगैंडा में उल्लेख किया है कि प्रचार अपने आप में पैदा नहीं होता बल्कि जानबूझकर पैदा किया जाता है। यंग ने प्रचार की परिभाषा बताते हुए लिखा है कि प्रचार वह सचेत, नियोजित एवं व्यवस्थित प्रतीकों का प्रयोग है, जिससे निर्देशन और उससे संबंधित मनोवैज्ञानिक कौशल से विचारों, मतों और मूल्यों को इस उद्देश्य से परिवर्तित किया जाता है कि पहले से तय उद्देश्य को हासिल किया जा सके।

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ कम्युनिकेशन के अनुसार- प्रोपेगैंडा प्रथमतः पक्षपात से प्रेरित करने का प्रयास है, लेकिन यह बात प्रश्न चिन्ह खड़ा करती है, पक्षपात से प्रेरित करना क्या है?

द्वितीयतः प्रभावित करने के लिए प्रेरक प्रयास व्यक्तिगत लाभ के लिए होगा। इसके तहत प्रमुख समकालीन गतिविधियां शामिल हैं। जैसे विज्ञापन, जनसंपर्क, राजनीतिक अभिन्यास, लॉबी बनाना और यहां तक कि प्रेस प्रसंग भी। कोई भी कम्युनीकेटर संचार के जरिए यह प्राप्त करना चाहेगा, चाहे वह वेतन देने के

माध्यम हों या अहं की तुष्टि के लिए हो, या किसी विचारक को सहयोग देना हो, या किसी शासन व्यवस्था को समर्थन देना हो। ये सब व्यक्तिगत लाभ के लिए आरोपित किए गए हैं। पक्षपात रूप से किए कार्य की उपयोगिता एक सीमा तक उपयोगी है।

तृतीयतः प्रभावित करने का वर्णित प्रयास अभिप्रेरित होता है। इरादे से किये गये प्रयास में हम प्रचारकर्ता यह इच्छा रखते हैं कि इस प्रकार से किए गए कार्य से विशिष्ट उपलब्धियां प्राप्त होंगी। जैसे बिक्री को बढ़ाने, ग्राहक की प्रतिष्ठा बढ़ाने, चुनाव जीतने का प्रयास, वैधानिक संस्था द्वारा किसी बिल के लिए समर्थन प्राप्त करना आदि। कई निर्णयों और क्रियाओं की प्रेरणाएं पूरे तौर पर सचेत और उसके परिणाम अभिप्रेरित होते हैं। जैसे कि एक अबोध व्यक्ति एक टूथपेस्ट की प्रशंसा करता है।

व्यक्तिगत लाभ के लिए इरादे से किए गए पक्षपात को आरोपित करने का प्रयास प्रोपेगैंडा की परिभाषा को और स्पष्ट करता है। ये समाज में मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, नैतिकता, अस्तित्ववादी आदि व्यवहार के प्रति तथा इसके संबंध में सवाल खड़े करता है।ये मुद्दे सार्वभौमिक रूप से सभी कालों और सभी संस्कृतियों का वर्णन नहीं करते हैं। प्रचार यानी प्रोपेगैंडा की एक निश्चित परिभाषा नहीं है। इस शब्द का उपयोग बहुत ही बेपरवाह रूप में किया जाता है। प्रोपेंगेंडा करने वाले समाजशास्त्री, राजनीति विज्ञानी और समाज मनोविज्ञानी सभी को अलग अलग लेबल देने के बजाय एक ही शब्द प्रोपेगेंडिस्ट कहा गया। हालांकि प्रोपेगैंडा

की अपेक्षा जनसंपर्क, प्रवक्ता, नीतिगत वक्तव्य, न्यूज रिलीज, रिपोर्ट्स तथा व्हाइट पेपर आदि शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं लेकिन 20 वीं सदी में प्रोपेगैंडा तथा प्रोपेगैंडा संगठनों का उदय हुआ।

प्रचार या प्रोपेगैंडा आखिर क्या चीज है?

जब शब्द के इतिहास का अवलोकन किया जाता है, तभी यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी कालखंड में किसी शब्द का ठीक ठीक अर्थ क्या था। शब्दकोश से स्पष्ट होता है कि प्रचार या प्रोपेगैंडा से जुड़े मूल्य बदलते रहे हैं। उसका लैटिन से आए अंग्रेजी भाषा के शब्द प्रोपेगेट से ढीला-ढाला संबंध रहा है। पूर्वकाल में प्रचारित किए जाने वाले सिद्धांत के सही तथा समाज की सीधी स्वीकृति के योग्य होने की बात पर जोर दिया गया था। बिना प्रश्न किए सीधी स्वीकृति ही विश्वसनीय बनती है, जो कि धर्म का रूप ले लेती है, और इसे सत्य कहा गया है। स्वयं स्वीकार किए गए सत्य के विशिष्ट स्वत्व में अक्षुण्य विश्वास ही प्रचार अथवा प्रोपेगैंडा की विशेष पहचान वर्षों रही है।

प्रोपेगेशन और प्रोपेगैंडा अंग्रेजी के शब्द हैं जो ग्रीक और लैटिन भाषाओं से उपजे हैं। इनका धार्मिक, राजनैतिक, चुनाव अभियान, क्रांति और युद्ध आदि के संदर्भों में प्रयोग होता रहा है, और इन लक्ष्यों से जुड़े राजनेताओं, क्रांतिकारियों, सेनानायकों, धर्मगुरूओं, लेखकों, कवियों, कलाकारों की गतिविधियां प्रतिस्पर्धी खेमों में अपनी अपनी विचारधाराओं और कार्यों को आगे बढ़ाने में एक साथ काम

करती रही हैं। अमेरिकी स्वतंत्रता युद्ध, फ्रांस की क्रांति, अमेरिकी गृह युद्ध, फ्रांस-एशिया युद्ध और दोनों विश्व युद्धों के दौरान दोनों पक्षों की ओर से प्रचार अथवा प्रोपेगेंडिस्ट लोग बड़े पैमाने पर कार्यरत रहे हैं। दूसरे विश्व युद्ध में प्रोपेगैंडा और उससे पैदा हुई मनोवैज्ञानिक युद्ध नीति यानी साइकोलॉजिक वारफेयर पर कई अध्ययन हो चुके हैं। इस पर साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। प्रचार अथवा प्रोपेगैंडा का प्रयोग आज जिन अर्थों में किया जाता है, उसका परीक्षण इसी ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाना चाहिए।

बार्टलैंड ने 1940 में पोलिटिकल प्रोपेगैंडा नामक पुस्तक में लिखा- सभी सहमत हैं कि प्रोपेगैंडा की परिभाषा, मत एवं व्यवहार को प्रभावित करने तथा उसके उद्देश्य के संदर्भ में ही की जानी चाहिए और यह सब इस तरह होना चाहिए कि जिन लोगों के मत तथा व्यवहार प्रभावित होते हैं, उन्हें पता भी न चले। शिक्षण की प्रक्रिया में तो लोग प्रेरित होते हैं कि स्वयं प्रयत्नपूर्वक किसी चीज को समझें, लेकिन प्रोपेगैंडा लोगों को अपने ही स्तर पर सदा के लिए बांधे रखता है।

परसुएशन एंड प्रोपेगैंडा नामक पुस्तक (1986) में विक्टोरिया ओ. डोनल और कीथ जावेट ने लिखा है, "प्रोपेगैंडा एक ऐसा प्रयास तथा प्रणालीबद्ध प्रयत्न है जो प्रोपेगेंडिस्ट की मंशा को आगे बढ़ाने वाली प्रतिक्रिया की प्राप्ति कराता है। दरअसल लक्ष्य की दिशा में तयशुदा तरीके से आगे बढ़ने का प्रयास ही प्रोपेगैंडा है।"

एम. मार्टिन्स कहते हैं, "प्रोपेगैंडा विचारहीन समूह के लिए तैयार किए अभिमत प्रस्तुत करता है"। चार्ल्स सीपमैंस का कथन है, "प्रोपेगैंडा एक संगठित आग्रह है"। प्रोफेसर हैराल्ड लासवेल ने कहा है, "एक ऐसे शब्द की आवश्यकता है, जिसे विशाल श्रोता समूह के लिए जानबूझकर दिए गए एक पक्षीय वक्तव्यों का प्रतीक कहा जा सके। प्रोपेगैंडा शब्द का हम इस रूप में प्रयोग कर सकते हैं"।

एडवर्ड बोंस जिन्हें आधुनिक जनसंपर्क का जनक कहा जाता है, ने कहा है कि "प्रोपेगैंडा किसी उद्यम, विचार अथवा समूह की विशिष्ट जनता के साथ उसके संबंध प्रभावित करने के लिए घटनाओं को रचने अथवा उन्हें आकार देने का एक लगातार और लंबे समय तक किया जाने वाला प्रयास है"।

ओडानेल और जावेट के अनुसार, "सूचना तथा आग्रह का उपयोग इस तरह से किया जाये कि सूचना का प्रभाव नियंत्रित हो, जनमत को साथ लिया जाए और व्यवहार के अधिकरों को मनचाहे ढंग से मोड़ा जा सके तो यही प्रोपेगैंडा होगा"। ओ डानेल और जावेट प्रोपेगैंडा को रंगों में विभाजित करते हैं, सफेद प्रोपेगैंडा, भूरा प्रोपेगैंडा और काला प्रोपेगैंडा। उन्होंने अपनी बात समझाने के लिए एक प्रोपेगैंडा पर्पज मॉडल भी प्रस्तुत किया।

यदि उद्गम स्पष्ट हो और संदेश में दी जाने वाली सूचना एकदम सही हो तो यह सफेद प्रोपेगैंडा है। अगर उद्गम तथा सूचना की सत्यता अनिश्चित हो तो यह भूरा

प्रोपेगैंडा है। और यदि उद्गम और सूचना झूठे हों, फरेब से भरे हों, महज धोखाधड़ी हों तो वह काला प्रोपेगैंडा है। इसी को आजकल विसूचना यानी मिसइंफार्मेशन कहा जाता है।

अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के डॉक्टर लास्वेल मानते हैं कि बहुत बड़े श्रोता समूह के प्रति जान बूझकर एकपक्षीय वक्तव्यों का दिया जाना ही प्रोपेगैंडा है। यह जनसंचार के माध्यम से की गयी वकालत है, जिसका प्रयोजन विवादग्रस्त मुद्दों में एक विशेष मकसद से जन दृष्टिकोण को प्रभावित करना है। हालांकि सही तौर पर संचार का माध्यम निर्देश, सूचना और जिज्ञासा के लिए ही इस्तेमाल होना चाहिए।

1961 में ब्रिटिश इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक रिलेशंस में अपने एक व्याख्यान में डी न ईडन ग्रीन ने इसी विषय को उठाते हुए हिटलर के प्रचार विशारद सहयोगी जोसफ गोयबल्स के सिद्धान्तों का जिक्र किया था। गोयबल्स ने कहा था, "जनमत निर्माण की प्रक्रिया पर सतत नजर रखने का राज्य को पूर्ण अधिकार है। प्रोपेगैंडा का मकसद मतांतर यानी कनवर्जन नहीं है, बल्कि यह है कि लक्ष्य के प्रति लोगों को आकर्षित किया जाए तथा उनके इस आकर्षण को कम न होने दिया जाए"। अभिप्राय यह है कि मानवीय कार्यकलाप के हर क्षेत्र को इस तरह ढांक लिया जाए कि व्यक्ति का परिवेश ही बदल जाए। राजनीतिक और आर्थिक जीवन की पेचीदा प्रक्रियाओं को सरलतम ढंग से पेश करते हुए उन्हें सड़क के स्तर पर लाकर हर आम आदमी के दिमाग में पक्के तौर पर बिठा दिया जाए।

गोयबल्स, प्रिसिंपल ऑफ प्रोपेगैंडा नामक पुस्तक के लेखक लिओनार्ड डाब्ज ने अपनी किताब में गोयबल्स की अवधारणा का बहुत अच्छा विश्लेषण किया है। हर जनसंपर्क कर्मी को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। न्यू आउट लाइंस इन द प्रिसिंपल्स ऑफ सोश्योलॉली नामक पुस्तक में इसी विषय वस्तु पर जोर दिया गया है। उनका कहना है कि प्रोपेगैंडा की अलग पहचान यह है कि वह अपना साक्ष्य प्राप्त करने की क्रिया में विरोधी दृष्टिकोण पर उचित विचार कदापि नहीं करता। उसके लिए साध्य सबसे ऊपर है और साधन गौण हैं। वह अपनी बात गुणदोष के आधार पर नहीं, बल्कि दूसरी बातों को कुरेदकर मनवाता है। उसमें विचार और विश्लेषण के लिए कोई स्थान नहीं है।

प्रोपेगैंडा विषय पर लिखते हुए अनेक आधुनिक लेखकों ने प्रायः उन आर्थिक, सामाजिक दबावों का उल्लेख किया है, जिनके कारण लोग अपने पारिवारिक प्रभाव से दूर हो जाते हैं और स्थानीय परिवेश तथा संस्कृति से उनका नाता टूट जाता है। उन्होंने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देने वाली राजनीतिक प्रणालियों का भी जिक्र किया है। उन हालात में प्रोपेगैंडा सर्वाधिक प्रभावी होता है।

कम्युनिकेशन एंड परसुएशन, 1985 में जेन्सन ने लिखा है, "अन्य लोगों के साथ संबंध रखने की व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकता ही प्रोपेगैंडा का सबसे तगड़ा हथियार है। सामूहिक धारणा से मेल खाती हुई आकांक्षाओं को उभारने वाले मुहावरों में संदेश दिया जाना प्रोपेगैंडा है"।

पश्चिमी देशों में विज्ञापन, जनसंपर्क तथा तथा प्रचार गतिविधियों को बहुत अधिक बढ़ावा मिला, साथ ही रेडियो स्टेशन और टेलीविजन का विकास हुआ।वहां सन 1980 के अंत में लगभग साढ़े चार हजार से अधिक रेडियो स्टेशन थे जो दूसरे देशों में प्रसारण किया करते थे। व्हाइस ऑफ अमेरिका, विश्व की कई भाषाओं में प्रसारण करता था। सोवियत रूस यूरोप में 21 भाषाओं में विदेशी प्रसारण किया करता था। ग्यारह अफ्रीकी, छह मिडिल ईस्ट, 20 साउथ ईस्ट एशिया, तीन लैटिन अमेरिका के देश अपना प्रसारण करते थे। इसी प्रकार बीबीसी की प्रसारण सेवाएं हैं। विदेशी दूतावासों के जरिए सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है, व्याख्यान आयोजित किए जाते हैं तथा स्थानीय भाषाओं में अनुवादित पुस्तकों से लेकर अन्य संचार माध्यमों के उपयोग के जरिए कार्यक्रमों का प्रचार प्रसार किया जाता था। भारतीय टेलीविजन भी दूसरे कई देशों में देखे जाते हैं। दूरदर्शन के अंतरराष्ट्रीय चैनल हैं। निजी न्यूज चैनल भी दुनिया भर में देखे जाते हैं। जनमत का फैलाव संचार के फैलाव के साथ तेजी से बढ़ा है। आपसी संबंध बेहतर करने के लिए जनसंचार और सूचना के इस्तेमाल की ही तरह प्रोपेगैंडा से अपना फायदा और दूसरे का नुकसान का हथियार भी यह संचार माध्यम बने हैं। चुनाव के संबंध में भी प्रोपेगैंडा बड़ा हथियार बनता रहा है, अब भी बनता है। न केवल मीडिया बल्कि समाज को भी इस से जागरुक रहना जरूरी है।

अध्याय 3
सर्वेक्षण क्या है?

सर्वेक्षण का सामान्यतया मतलब है किसी भी विषय या वस्तु को उसके गुण दोष के आधार पर तटस्थ होकर देखना और उनकी स्पष्ट रूप से पहचान करना। इसमें इस पहचान के कारणों को भी समझने की कोशिश करना शामिल है। इसका मकसद विषय को समझना और उसकी पड़ताल कर एक निष्पत्ति पर पहुंचने का प्रयास और उसमें अगर सुधार की गुंजाइश है तो उसके लिए तरीके भी तजबीज करना शामिल है। सर्वेक्षण कई तरह के होते हैं। यह प्रकार उनकी विषय वस्तु के आधार पर बदलते रहते हैं। **मुख्यतः सामाजिक और आर्थिक सर्वेक्षण** सर्वाधिक अहम सर्वेक्षण माने जाते हैं। सामाजिक सर्वेक्षण का दायरा विस्तृत होता है। इसके कई आयाम हो सकते हैं। इसमें सांस्कृतिक, परंपरा से लेकर स्वास्थ्य और राजनीति तक के तमाम आयाम शामिल किए जा सकते हैं। हम यहां सामाजिक सर्वेक्षण की चर्चा प्रमुख रूप से करेंगे। सामाजिक सर्वेक्षण, चुनाव के संदर्भ में किए जाने वाले सर्वेक्षणों को लेकर हमारी समझ को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण

सामाजिक सर्वेक्षण को एक समाज शास्त्रीय अध्ययन पद्धति के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रणाली के जरिए

न केवल सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, बल्कि समाज सुधार के मकसद को सामने रखते हुए उन समस्याओं का समाधान ढूंढने का भी प्रयास किया जाता है। इस अर्थ में सामाजिक सर्वेक्षण एक वैज्ञानिक साधन है। वैज्ञानिक इस अर्थ में कि इसमें अध्ययन कार्य किसी मनमाने ढंग से न होकर वैज्ञानिक विधि के आधार पर होता है। कोई भी निदान या निष्कर्ष वास्तविक निरीक्षण पर साबित होता है।

सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ

सर्वेक्षण का शाब्दिक अर्थ ध्यानपूर्वक किसी वस्तु या घटना का निरीक्षण परीक्षण करना है। यदि यह निरीक्षण परीक्षण सामाजिक जीवन या सामाजिक घटना से संबंधित है तो उसे मोटे तौर पर सामाजिक सर्वेक्षण कहा जा सकता है। इस नजरिये से सामाजिक सर्वेक्षण वह पद्धति है जो किसी सामाजिक समूह अथवा सामाजिक जीवन के किसी पक्ष या घटना के संबंध में वैज्ञानिक अध्ययन में प्रयुक्त होती है। इसका संबंध किसी सामाजिक दशा, स्थिति अथवा परिस्थिति या समस्या से होता है।

डिक्शनरी ऑफ सोश्यालॉजी के अनुसार, "एक समुदाय के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पहलू जैसे, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन, रहन-सहन, खान-पान के सम्बन्ध में तथ्यों के बहुत व्यवस्थित एवं विस्तृत संकलन तथा विश्लेषण को ही मौटे तौर पर सामाजिक सर्वेक्षण कहते हैं। बेवस्टर शब्दकोष के अनुसार, "वास्तविक जानकारी प्राप्त

करने के लिए किया गया आलोचनात्मक निरीक्षण ही सामाजिक सर्वेक्षण कहलाता है"।

इस विवेचना से यह साफ है कि सामाजिक सर्वेक्षण वास्तव में सामाजिक जीवन के किसी पक्ष, विषय या समस्या के संबंध में भरोसे योग्य तथ्यों के संकलन और उनका विश्लेषण करने की एक प्रणाली है जो कि कुछ वैज्ञानिक सिद्धांतों तथा मान्यताओं पर आधारित होने के कारण प्रयोग सिद्ध निष्कर्षों को निकालने में सहायक सिद्ध होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सामाजिक सर्वेक्षण का संबंध केवल सामाजिक समस्याओं अथवा बीमारियों के विषयों से होता है। उसका प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक तौर पर समस्या के समाधान से समाज सुधार की परियोजना को पेश करना होता है। इस कथन में पर्याप्त सत्यता है, लेकिन ऐसे विषयों का अध्ययन करने के संबंध में सामाजिक सर्वेक्षण पर कोई कठोर निषेध लागू नहीं किया गया है अथवा किया भी जा सकता है, यह सोचना गलत है। एक समुदाय के संपूर्ण जीवन या उसके किसी विशेष पक्ष के संबंध में वैज्ञानिक तौर पर तथ्यों के संकलन, विश्लेषण तथा निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रणाली को भी सामाजिक सर्वेक्षण माना जाता है। विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषाएं

सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा पर विद्वानों में एकमत नहीं है। कुछ विद्वान इस सर्वेक्षण को एक समुदाय

के सामान्य जीवन के अध्ययन से संबंधित तो कुछ विद्वान समस्यायों और समाज सुधार से संबंधित मानते हैं। ऐसे विद्वान भी हैं जो सामाजिक सर्वेक्षण को वैज्ञानिक पद्धति के रूप में परिभाषित करते हैं, इसलिए यह उचित होगा कि हम सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा को इन तीनों आधारों पर विवेचित करें।

1. सामाजिक सर्वेक्षण सामान्य सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के रूप में- प्रथम श्रेणी के तहत वे विद्वान आते हैं जो अपनी परिभाषा में इस बात पर जोर देते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक घटनाओं का अध्ययन है। वेल्स के शब्दों में साधारण तौर पर सामाजिक सर्वेक्षण को किसी विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले एक मानव समूह की सामाजिक संस्थाओं और क्रियाकलापों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सिन पाओ यांग के मुताबिक, "सामाजिक एक समूह सर्वेक्षण प्रायः लोगों के की रचना, क्रियाकलापों तथा रहन-सहन की दशाओं के संबंध में एक जांच पड़ताल है"।
2. सामाजिक सर्वेक्षण समस्याओं और समाज सुधार से संबंधित अध्ययन के रूप में- इस श्रेणी की परिभाषा से इत्तेफाक रखने वाले रखने वाले विद्वान मानते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक समस्याओं का अध्ययन समाज सुधार के उद्देश्य से करता है। इस अर्थ में समाज व

उसकी समस्याओं का अध्ययन तथा उन समस्याओं के समाधान की खोज करके सामाजिक कल्याण करने के दोहरे उद्देश्य की पूर्ति सामाजिक सर्वेक्षण करता है।श्रीमती यंग ने लिखा है, "सामाजिक सर्वेक्षण समाज सुधार की किसी क्रियात्मक योजना के निरूपण और निश्चित भौगोलिक सीमाओं में व्याप्त तथा निश्चित सामाजिक परिमाणों एवं सामाजिक महत्व वाली किसी प्रचलित या तत्कालिक समस्या के सुधार से संबंधित है।" वर्जेस के मतानुसार, "एक समुदाय का सर्वेक्षण सामाजिक विकास की एक रचनात्मक परियोजना प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया गया उस समुदाय की दशाओं तथा आवश्यकताओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

3. सामाजिक सर्वेक्षण एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में -इस श्रेणी के तहत वे विद्वान आते हैं, जो सामाजिक सर्वेक्षण की विवचेना वैज्ञानिक पद्धति के रूप में करते हैं। बतौर उदाहरण मार्स का कथन है, "संक्षेप में, सामाजिक सर्वेक्षण कुछ परिभाषित उद्देश्यों के लिए किसी विशेष सामाजिक परिस्थिति अथवा समस्या अथवा जनसंख्या का वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में विश्लेषण करने की केवल एक पद्धति है।"

तीनों श्रेणियों की परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें सामाजिक सर्वेक्षण की एक सामान्य परिभाषा का आभास सरलता से हो जाता है। हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण वह वैज्ञानिक पद्धति है जसके जरिए एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र की किन्हीं सामाजिक घटनाओं के अथवा सामूहिक जीवन के विषय में भरोसा करने योग्य तथ्यों को संकलित किया जाता है। इससे घटना की वास्तविकता का अध्ययन, विश्लेषण तथा निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यदि घटना समस्या है तो उसे समाधान के लिए आवश्यक परियोजना बनाकर समाज सुधार की दिशा में योगदान किया जा सकता है।

सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति और विशिष्ट लक्षण

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति वैज्ञानिक है, क्योंकि यह वह साधन है जिसके जरिए सामाजिक घटनाओं तथा सामाजिक समस्याओं के संबंध में हम भरोसा करने लायक तथ्यों का संकलन कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से इसका संबंध सामाजिक घटनाओं तथा सामाजिक समस्याओं से है। इस संबंध में उल्लेखनीय शर्त यह है कि सामाजिक सर्वेक्षण एक ही समय में संपूर्ण समाज की सभी घटनाओं या समस्याओं का समाधान नहीं करता। इसका अध्ययन क्षेत्र एक समय में एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के तहत सीमित रहता है।

हैरीसन के अनुसार, "केवल वे ही घटनाएं सामाजिक सर्वेक्षण के माध्यम से अध्ययन की जासकती हैं, जो भौगोलिक रूप से सीमित हों। इसका कारण भी स्पष्ट है और वह यह कि चूंकि सामाजिक सर्वेक्षण में सवेक्षणकर्ता को स्वयं घटनाओं का निरीक्षण, साक्षात्कार आदि करना पड़ता है, इस वजह से असीमित अध्ययन क्षेत्र को चुनना संभव नहीं होता। अपनी वैज्ञानिक प्रकृति को बनाए रखने के लिए अध्ययन क्षेत्र को सीमित करना ही पड़ता है"।

सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति सामाजिक है, न कि प्राकृतिक। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक सर्वेक्षण का संबंध सामाजिक घटनाओं, सामाजिक तथ्यों या सामाजिक समस्याओं से होता है, न कि प्राकृतिक घटनाओं या समस्याओं से। संक्षेप में कह सकते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण का संबंध सामाजिक दुनिया से होता है।

सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति व विलक्षणता के संबंध में उल्लेखनीय बात यह भी है कि इसमें सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के उद्देश्य शामिल हो सकते हैं। सैद्धांतिक इस अर्थ में कि सामाजिक सर्वेक्षण के जरिए जुटाए गए तथ्य एक घटना या समस्या के संबंध में हमें यथार्थ जानकारी देते हैं। इस जानकारी के आधार पर समस्या के समाधान के लिए या समाज सुधार की योजना बनाने के मकसद की पूर्ति के लिए सामाजिक सर्वेक्षण को उपयोगी पाया जा सकता है। इस वजह से सामाजिक सर्वेक्षण को व्यावहारिक भी माना जा सकता है। इसका कारण भी स्पष्ट है और वह यह कि चूंकि सामाजिक

सर्वेक्षण में सवेक्षणकर्ता को स्वयं घटनाओं का निरीक्षण, साक्षात्कार आदि करना पड़ता है, इस वजह से असीमित अध्ययन क्षेत्र को चुनना संभव नहीं होता। अपनी वैज्ञानिक प्रकृति को बनाए रखने के लिए अध्ययन क्षेत्र को सीमित करना ही पड़ता है।

सामाजिक सर्वेक्षण का अध्ययन विषय व क्षेत्र

सामाजिक सर्वेक्षण के अध्ययन विषय तथा क्षेत्र के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। इसे मुख्य तौर पर दो श्रेणी में रखा जा सकता है। पहली श्रेणी में वे विद्वान हैं जिनके अनुसार एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में एक समूह या समुदाय के जीवन से संबंधित किसी भी सामाजिक घटना का अध्ययन सामाजिक सर्वेक्षण के क्षेत्र के तहत आता है। वेल्स, बोगार्डल, सिनपाओ यांग आदि के मतों से यही स्पष्ट होता है। इसके विपरीत दूसरी श्रेणी के विद्वान सामाजिक सर्वेक्षण का अध्यन विषय तथा क्षेत्र केवल सामाजिक समस्याओं और समाज सुधार की रचनात्मक परियोजना के प्रतिपादन तक सीमित मानते हैं। इस मत वाले विद्वानों में बर्जेस, केलोंग तथा श्रीमती यंग शामिल हैं। यदि इस विचार को ही आधार माना जाए तो हम कह सकते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण का क्षेत्र एक समय में एक निश्चित भौगालिक प्रदेश तक ही सीमित होता है अर्थात जिस घटना का वह अध्ययन कर रहा है, उसका भौगोलिक रूप में सीमित होना आवश्यक है। क्योंकि असीमित क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्ययन यथार्थ परक नहीं हो सकता। इस प्रकार

सीमित भौगोलिक क्षेत्र की सभी घटनाओं का अध्ययन सामाजिक सर्वेक्षण के दायरे में नहीं आता। इसके लिए तीन शर्तें आवश्यक हैं। घटना सामाजिक समस्या हो, सामाजिक तौर पर वह समस्या पर्यात गंभीर या महत्वपूर्ण हो तथा उस घटना की माप व तुलना ऐसी घटनाओं से की जा सके जिन्हें हम आदर्श प्रारूप मान चुके हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य और कार्य

सामाजिक सर्वेक्षण की प्रगतिशील प्रकृति के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इसके उद्देश्यों की परिधि सीमित नहीं हैं। मोटे तौर पर ज्ञान प्राप्ति, समस्या का समाधान तथा समाज कल्याण की परियोजना पेश करना सामाजिक सर्वेक्षण के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं। इसके अलावा कुछ सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्य हो सकते हैं। इन सभी उद्देश्यों को या सामाजिक शोध में सामाजिक सर्वेक्षण के कार्य या महत्व को हम इस प्रकार पेश कर सकते हैं।

1. **सामाजिक तथ्यों का संकलन**- सामाजिक सर्वेक्षण एक वैज्ञानिक पद्धति है और उस पद्धति का आधारभूत उद्देश्य एक सामाजिक घटना या समस्या के विषय में निर्भर योग्य तथ्यों को जुटाना है। सामूहिक जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं तथा व्यवहारों के संबंध में गणनात्मक आंकड़ों का संकलन सामाजिक सर्वेक्षण का प्रमुख उद्देश्य है। इसलिए औद्योगिक विकास की प्रकृति व परिणाम, सामाजिक सुरक्षा, धार्मिक क्रियाकलाप व विचार, मनोरंजन के तरीके, आर्थिक स्थिति, रहन सहन की दशाएं, परिवार की रचना, जनसंख्या

की प्रकृति, वैवाहिक स्थिति आदि विषयों के संबंध में सूचना एकत्रित करने का काम सामाजिक सर्वेक्षण निरंतर करता रहता है। आर्थिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में भी सामाजिक सर्वेक्षण के महत्व को आज सभी लोग अकाट्य रूप से स्वीकार करते हैं। बाजार सर्वेक्षण के जरिये व्यापारिक संस्थाएं यह जान सकती हैं कि उनके उत्पादों की खपत या ब्रिकी की संभावना किस बाजार में कितनी है? और उसी प्रकार उद्योगपति उत्पादन संबंध कार्य क्षमता के बारे में जानकारी सर्वेक्षण विधि के जरिए प्राप्त कर सकता है।

2. **सामाजिक समस्याओं का अध्ययन**- सामाजिक सर्वेक्षण का एक उल्लेखनीय उद्देश्य उन समस्याओं का अध्ययन है जो साधारणतया मानव जीवन को पीड़ित करती हैं। गरीबी, बेरोजगारी, गंदगी, बीमारी, अभाव, अशिक्षा, अपराध, बाल अपराध, वैश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, आत्महत्या, विवाह विच्छेद यानी तलाक, सामाजिक संघर्ष, सामाजिक तनाव आदि ऐसी ही सामाजिक समस्याएं हैं जो मानव के दुख दर्द को मुखरित करती हैं। सामाजिक सर्वेक्षण इन दुख दर्दों को अनुभव करने का प्रयत्न करता है अर्थात इन समस्याओं के अंदर घुसकर उनके अंतर्निहित कारणों को जानने का प्रयास करता है, जिससे उनका समाधान किया जा सके।

3. **श्रमिक वर्ग की दशाओं का अध्ययन**- आज के दौर में यह महसूस किया जाता है कि सामाजिक समस्याएं मजदूर वर्गों में ज्यादा साफ दिखाई देती हैं। इसलिए सामाजिक सर्वेक्षण का विशेष ध्यान श्रमिक वर्ग की दशाओं तथा

समस्याओं पर होता है। इसके दो प्रमुख कारण हैं। पहला यह कि श्रमिक वर्ग की दशाओं के अध्ययन के साथ उच्च वर्ग की स्थिति का अध्ययन करना भी जरूरी हो जाता है, क्योंकि इसके बिना श्रमिकों की तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकती। श्रमिक वर्ग की दशाओं का अध्ययन करने में समुदाय का अध्ययन उसमें शामिल हो जाता है। दूसरा यह कि इसके जीवन की दशाओं से अन्य सभी प्रकार की समस्याएं घनिष्ट रूप से संबंधित पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए श्रमिक वर्ग में व्याप्त बेकारी को ही लें तो हम कह सकते हैं कि जहां बेकारी है वहां गरीबी होगी, स्वास्थ्य का स्तर भी निम्न होगा। शिक्षा का प्रसार कम होगा एवं अपराध तथा बाल अपराध की संभावनायें ज्यादा होंगीं। अतः सामाजिक सवेक्षण श्रमिक वर्ग की समस्याओं के माध्यम से सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करने का प्रयास करता है।

4. कार्य-करण सम्बन्ध की खोज- सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करते हुए उन घटनाओं में अंतर्निहित कारणों को ढूंढने का प्रयास करता है। क्योंकि इसकी पहली अवधारणा यही है कि प्रत्येक सामाजिक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य ही होता है। सामाजिक घटना आकस्मिक नहीं होती। उसमें नियमितता होती है, इसलिए उसमें अंतर्निहित कारणों को ढूंढा जा सकता है। इसी कार्य कारण संबंध को खोजना सामाजिक सर्वेक्षण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है क्योंकि इसके बिना कोई अध्ययन वैज्ञानिक यर्थाथता को प्राप्त नहीं कर सकता।

5. **सामाजिक सिद्धांतों की पुनर्परीक्षा-** सामाजिक सर्वेक्षण का एक और उल्लेखनीय उद्देश्य विद्यमान सामाजिक सिद्धांतों की पुनर्परीक्षा करना है। इस प्रकार की परीक्षा की आवश्यकता इसलिए होती है क्योंकि सामाजिक सिद्धांतों का संबंध सामाजिक घटनाओं से होता है और सामाजिक घटनाएं सामाजिक परिस्थितियों से संबंधित होती हैं, जो स्वयं परिवर्तनशील और विकासशील होती हैं। अतः सामाजिक परिस्थितयों में बदलाव होने से सामाजिक घटना की प्रकृति बदल जाती है। उसके बदलने से सामाजिक सिद्धांत में भी आवश्यक परिवर्तन की जरूरत होती है। सामाजिक सर्वेक्षण विद्यमान परिस्थितियों के संदर्भ में वास्तविक तथ्यों का संकलन कर बाद में इसकी परीक्षा करता है कि एक घटना के संबंध में जो पुराने सिद्धांत हैं वे अब भी ठीक हैं या नहीं, और अगर ठीक नहीं हैं तो परिवर्तित परिस्थितियों में खरे उतरने के लिए किसी प्रकार के सिद्धांत की जरूरत है।

6. **प्राक्कलन का निर्माण तथा परिचालन**- जिस समूह का अध्ययन करना है इसके विषय में ज्ञान हासिल करने के लिए पहले एक सर्वेक्षण किया जाता है। यह सामान्य ज्ञान प्राकल्लन तैयार करने में बहुत मददगार साबित होता है। प्राक्कलन के निर्माण के बाद वह प्राक्कलन वास्तव में ठीक है या नहीं इसका प्रमाण तो वास्तविक तथ्यों के आधार पर ही मिल सकता है। सामाजिक सर्वेक्षण उन्हीं तथ्यों को एकत्रित करता है और प्राक्कलन की यर्थाथता की परीक्षा करता है।

7. सामाजिक समस्याओं का समाधान व समाज सुधार- सामाजिक सर्वेक्षण के कुछ व्यावहारिक या कल्याणकारी उद्देश्य भी होते हैं। सामाजिक सर्वेक्षण एक समस्या से संबंधित तथ्यों के आधार पर उसके कारणों को इस उद्देश्य से भी ढूंढने का प्रयास करता है कि उस समस्या का समाधान किया जा सके। इस अर्थ में सामाजिक समस्याओं के समाधान की खोज भी सामाजिक सर्वेक्षण का एक उल्लेखनीय उद्देश्य है। इतना ही नहीं, सामाजिक सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर समाज कल्याण की एक रचनात्मक परियोजना को प्रस्तुत करना भी सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य होता है। लेकिन यह बात भी है कि सामाजिक सर्वेक्षण कोई सामाजिक योजना बनाने वाला नहीं होता है, वह तो केवल अपने सर्वेक्षण से प्राप्त ज्ञान के आधार पर रचनात्मक योजना बनाने के लिए आवश्यक सिद्धांतों को प्रतिपादित करता है। उसको वास्तविक रूप में अमल में लाने का काम सरकार, सुधारकों और प्रशासकों का है। सामाजिक सर्वेक्षण समस्याओं के समाधान व समाज कल्याण से संबंधित निज सिद्धांतों तथा सुझावों को पेश करता है। वे सभी सामाजिक शोधकर्ता के लिए सहायक सिद्ध होते हैं, क्योंकि ये सिद्धांत सामाजिक घटनाओं के संबंध में उसकी जानकारी को अधिक स्पष्ट कर देते हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक शोध का पारस्परिक संबंध

सामाजिक सर्वेक्षण तथा सामाजिक शोध पूरी तरह एक दूसरे से भिन्न हैं, यह सोचना गलत होगा। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सामाजिक सर्वेक्षण तथ्यों का संकलन करता है, उनके आधार पर घटनाओं के कार्य कारण संबंध को ढूंढता है, सामाजिक संबंधों की पुर्नपरीक्षा करता है। ये सभी सामाजिक शोध के अनिवार्य अंग हैं। जिनके बिना सामाजिक शोध की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सामाजिक सर्वेक्षण की सहायता से ही सामाजिक शोधकर्ता अपनी प्राक्कल्पना की सत्यता की जांच करता है। इस दृष्टिकोण से भी सामाजिक सर्वेक्षण व शोध का संबंध घनिष्ठ प्रतीत होता है। दूसरी तरफ सामाजिक शोध तथ्यों के संकलन की अनेक नई प्रविधियों की खोज कर सकता है और सामाजिक घटनाओं के संबंध में हमारे ज्ञान को विस्तृत करता है। ये दोनों ही स्थितियां सामाजिक सर्वेक्षण के लिए सहायक होती हैं। इस प्रकार एक दूसरे के पूरक के रूप में ये दोनों काम करते रहते हैं। यही कारण है कि हम सामाजिक घटना के अध्ययन को व्यक्त करने के लिए सामाजिक सर्वेक्षण या सामाजिक शोध कोई भी शब्द बहुधा प्रयोग कर सकते हैं।

सामाजिक शोध व सामाजिक सर्वेक्षण दोनों ही का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के संबंध में ज्यादा से ज्यादा जानकारी हासिल करना है जिससे कि उन

पर मानवीय नियंत्रण उत्तरोत्तर बढ़ सके। दोनों में ही वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए दोनों में ही साक्षात्कार, निरीक्षण, प्रश्नावली, अनुसूची, सैंपल आदि प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। दोनों में नए तथ्यों की खोज की जाती है। इन्हीं समानताओं के कारण कई अमेरिकन समाजशास्त्री सामाजिक सर्वेक्षण को सर्वेक्षण शोध भी कहते हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक शोध में भेद

समानताओं के बावजूद सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक शोध में कुछ आधारभूत अंतर भी हैं। श्रीमती यंग तथा अन्य विद्वानों के विचारों के आधार पर इन अंतरों को इस तरह समझा जा सकता है:

1. सामाजिक सर्वेक्षण का संबंध विशिष्ट स्थानों, विशिष्ट लोगों, विशिष्ट समस्याओं और विशेष हालात से होता है। मसलन कानपुर के श्रमिक वर्ग के स्वास्थ्य स्तर या भोपाल के गैस पीड़ित इलाकों में लोगों का स्वास्थ्य आदि। इसके विपरीत सामाजिक शोध का संबंध अधिक सामान्य व अधिक अर्मूत समस्याओं से होता है, जैसे औद्योगिक क्षेत्र में बाल अपराध का विस्तार।

2. सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य किसी समस्या के संबंध में जानकारी प्राप्त करके तथा उसका समाधान ढूंढकर तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति करना होता है। इसके लिए वह मौजूदा ज्ञान से पूरा लाभ उठाने का प्रयास करता है। जिससे कि अधिक शुद्ध विधियों तथा सिद्धांतों का

निरूपण करना संभव हो सके। इस लिहाज से हम कह सकते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति व्यावहारिक है, जबकि सामाजिक शोध की प्रकृति सैद्धांतिक है।

3. सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के संबंध में तथ्यों का संकलन समाज सुधार या समाज कल्याण के लिए करता है। जिससे मानव जीवन के लिए प्रगति का पथ अधिक स्पष्ट हो सके। इसके विपरीत सामाजिक शोध मानव के संबंध में हमारे ज्ञान को विस्तृत करने तथा अध्ययन प्रविधियों को उन्नत करने के उद्देश्य को सामने रखता है। हो सकता है कि यह ज्ञान अंत में सामाजिक योजना बनाने वालों के लिए सहायक सिद्ध हो।

4. सामाजिक सर्वेक्षण के लिए प्राक्कल्पना की आवश्यकता नहीं होती, जबकि सामाजिक शोध का आधार प्राक्कल्पना होती है। इसका कारण यह है कि सामाजिक सर्वेक्षण में किसी समस्या से संबंधित प्रत्येक आवश्यक सूचना जुटाने का प्रयास किया जाता है, जिससे उस समस्या के अंतर्निहित कारणों का पता चल सके। तथ्यों का इस प्रकार संकलन करने के लिए प्राक्कल्पना का निर्माण पहले से किया जाता है। ताकि वास्तविक तथ्यों के संकलन के जरिए उस परिकल्पना की सत्यता की जांच की जा सके।सामाजिक सर्वेक्षण में संकलित तथ्यों के आधार पर समस्या की व्याख्या की जाती है। समाजशास्त्री पार्क ने लिखा है, "सर्वाधिक सीमित अर्थ में मुझे यह कहना चाहिए कि एक सर्वेक्षण कदापि शोध नहीं है, यह केवल व्याख्या

है। यह प्राक्कल्पना की परीक्षा करने के स्थान पर केवल समस्याओं को परिभाषित करता है"।

5. सामाजिक सर्वेक्षण का संबंध मुख्य रूप से सामाजिक समस्याओं से होता है। जबकि सामाजिक शोध प्रत्येक सामाजिक घटना से संबंधित है। सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य समाज सुधार या समाज कल्याण होता है, इसलिए यह केवल उन्हीं सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है जो कि समाज कल्याण के रास्ते में रुकावट खड़ी करने वाली होती हैं। इसके विपरीत सामाजिक शोध का उद्देश्य इस प्रकार से सीमित नहीं होता। उसका उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति व विस्तार है और ज्ञान की प्राप्ति किसी भी सामाजिक घटना के विषय में हो सकती है। इस नजरिए से सामाजिक शोध का क्षेत्र सामाजिक सर्वेक्षण से कही अधिक विस्तृत, व्यापक और गहन होता है।

6. इस विवेचना के आधार पर भी कहा जा सकता है कि सामाजिक सर्वेक्षण में स्थूल अध्ययन और सामाजिक शोध में सूक्ष्म अध्ययन होता है। सामाजिक सर्वेक्षण में समस्या से संबंधित हर संभावित सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं लेकिन उनका सूक्ष्म अध्ययन नहीं किया जाता, क्योंकि समस्या को समझने व उसके संबंध में समाधान को ढूंढने में अधिक सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत सामाजिक शोध में विशिष्ट तथ्यों का बहुत ही बारीकी से अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि इसके बिना यथार्थ ज्ञान प्राप्ति संभव नहीं है।

7. सामाजिक सर्वेक्षण व्यावसायिक आधार पर किया जा सकता है जैसे कि कई संस्थाएं, सरकारें आदि सवैतनिक कर्मचारियों से सर्वेक्षण कराती हैं। सामाजिक शोध व्यावसायिक आधार पर नहीं कराया जा सकता। ज्ञान हासिल करने की प्रवृत्ति ही शोध कार्य के लिए आवश्यक प्रेरणा देती है। सामाजिक सर्वेक्षण सामूहिक प्रयास के रूप में आयोजित होते हैं। इसके तहत कई विशिष्ट सेवाएं संगठित होने लगी हैं। जैसे सांख्यिकीय अधिकारी, सारणीकर्ता, अध्ययन स्थल। इनमें से किसी को भी आजीविका बनाया जा सकता है। इंग्लैंड, अमेरिका की ही तरह भारत में भी बीते करीब तीन दशक में ऐसी कई सर्वेक्षण संस्थाएं स्थापित हुई हैं जो विभिन्न राजनीतिक दलों, फर्मो, संस्थाओं और सरकारों के कहने पर उनकी इच्छा के अनुसार विषयों पर स्वतंत्र सर्वेक्षण करती हैं तथा उसके लिए पारिश्रमिक लेती हैं। भारत में इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन नई दिल्ली, गोखले इंस्टीट्यूट आफ रिसर्च डिवीजन ऑफ पब्लिकेशन कंपनी, मैक्सिसआदि संस्थाएं अपने सर्वेक्षणों में सवैतनिक सर्वेक्षण कार्यकर्ताओं से सर्वेक्षण कराती हैं। इसके विपरीत सामाजिक शोध को जीवन व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाया जा सकता। किसी विषय में ज्ञान बढ़ाने और नए तथ्य खोजने की जिज्ञासा में ही शोधकर्ता वर्षों तक कठिन परिश्रम कर शोध कार्य करता है।

8. सामाजिक सर्वेक्षण का संगठन प्रायः एक अध्ययन दल से होता है। इसका क्षेत्र विस्तृत होता है और क्षेत्र के सभी

महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन करना होता है। एक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं। यह सामूहिक प्रयास होता है। एक व्यक्ति सर्वेक्षण का निर्देशक बनता है और कुछ लोग निरीक्षक बनते हैं। कुछ क्षेत्रीय अनुसंधान अनुसंधानकर्ता का कार्यभार संभालते हैं। दल के अन्य लोग टाइपिंग, तथ्य विश्लेषण, सारणीकरण आदि काम करते हैं। इंग्लैंड, अमेरिका आदि जहां सर्वेक्षण के काम को व्यवसाय के रूप में अपनाने की शुरूआत हुई, सैकड़ों लोग इस काम में लगे रहते हैं। अब भारत समेत कई विकासशील देशों में भी इसी तरह की संस्थाएं काम करती हैं, जसमें बड़ी संख्या में लोग जुडे होते हैं और वे सर्वेक्षण कार्य करते रहते हैं। इसके विपरीत सामाजिक शोध का संगठन व्यक्तिगत रूप में ही होता है क्योंकि विभिन्न दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों को लेकर शोध कार्य नहीं किया जा सकता। एक व्यक्ति शोध कार्य को व्यक्तिगत तौर पर ही करता है।

मोजर का विभाजन

1. **जनसंख्यात्मक विशेषताएं** -सामाजिक सवेक्षण के क्षेत्र के तहत किसी समूह या समुदाय विशेष की जनसंख्यात्मक विशेषताओं का अध्ययन शामिल है। इसमें परिवार की संरचना, वैवाहिक स्थिति, जन्म व मृत्यु दर, आयु, स्त्रीपुरूष का अनुपात-, जन्म नियंत्रण का अध्ययन शामिल है।
2. सामाजिक पर्यावरण के तहत मोजर ने उन सभी सामाजिक तथा आर्थिक कारणों को शामिल किया

है, जो लोगों के जीवन को हमेशा प्रभावित करते हैं। समूह या समुदाय के लोगों के विभिन्न व्यवसाय, उनकी आय, मकानों की व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सामाजिक सर्वेक्षण का अध्ययन विषय हैं। इसी प्रकार समूह और समुदाय के रहन सहन के तरीके व दशाएं भी सामाजिक सर्वेक्षण के अध्ययन क्षेत्र में आती हैं।

3. **सामाजिक क्रियाएं-** इसके तहत आजीविका के अलावा लोग जो सामाजिक क्रियाएं करते हैं, उन्हें शामिल किया जाता है। जैसे खाली समय का उपयोग, मनोरंजन, टीवी देखना, रेडियो सुनना, अखबार पढ़ना, यात्राएं, खर्च की आदतें, सामुदायिक भोज, नाच गाना, खेलकूद, त्योहार मनाना आदि अध्ययन सामग्री बन सकते हैं। सामाजिक जीवन में पाई जाने वाली सामान्य आदतें, व्यवहार प्रतिमान, सामाजिक प्रवृत्तियां, दैनिक जीवन का सामान्य व्यवहार भी सामाजिक सर्वेक्षण के अध्ययन विषय होते हैं।
4. **विचार तथा मनोवृत्तियां–** विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में समुदाय के लोगों का विभिन्न घटनाओं के प्रति मनोवृत्तियों का अध्ययन भी सामाजिक सर्वेक्षण के क्षेत्र में आता है। उदाहरण के लिए छुआछूत, विधवा विवाह, अंतरजातीय विवाह, राजनैतिक दल के प्रति लोगों के विचारों तथा मनोवृत्तियों का अध्ययन सामाजिक सर्वेक्षण मे

किया जाता है। वास्तव में सामाजिक सर्वेक्षण के अध्ययन विषय तथा क्षेत्र के संबंध कोई कोई निश्चित सीमा रेखा खींचना संभव नहीं है, क्योंकि सामाजिक अध्ययन तथा अनुसंधान का क्षेत्र समाज विज्ञान में प्रगति के साथ साथ स्वयमेव ही विस्तृत हो जाता है। अतः किसी अंतिम क्षेत्र का निर्धारण अनुचित तथा अप्राकृतिक दोनों ही होगा।

5. **सामाजिक सर्वेक्षण का संगठन-** सामाजिक सर्वेक्षण का संगठन प्रायः एक अध्ययन दल से होता है। इसका क्षेत्र विस्तृत होता है और इसे क्षेत्र के सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन करना होता है। एक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं। यह सामूहिक प्रयास होता है। एक व्यक्ति सर्वेक्षण का निर्देशक बनता है और कुछ लोग निरीक्षक बनते हैं। कुछ क्षेत्रीय अनुसंधानकर्ता का कार्यभार संभालते हैं। दल के अन्य लोग टाइपिंग, तथ्य विश्लेषण, सारणीकरण आदि काम करते हैं। इंग्लैंड, अमेरिका आदि जहां सर्वेक्षण के काम को व्यवसाय के रूप में अपनाने की शुरूआत हुई, सैकड़ों लोग इस काम में लगे रहते हैं। अब भारत समेत कई विकासशील देशों में भी इसी तरह की संस्थाएं काम करती हैं, जिसमें बड़ी संख्या में लोग जुड़े होते हैं और वे सर्वेक्षण कार्य करते रहते हैं। इसके विपरीत सामाजिक शोध का संगठन व्यक्तिगत रूप में ही होता है क्योंकि विभिन्न दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों को लेकर शोध

कार्य नहीं किया जा सकता। एक व्यक्ति शोध कार्य को व्यक्तिगत तौर पर ही करता है।

ग्लेन. एम. फिशर ने सामाजिक शोध तथा सामाजिक सर्वेक्षण के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "सामाजिक शोध सामाजिक सर्वेक्षण की अपेक्षा अधिक गहन तथा सूक्ष्म होता है और सामान्य सिद्धांतों की खोज से अधिक संबंधित रहता है। सामाजिक शोध का आधारभूत उद्देश्य सैद्धांतिक तौर पर ज्ञान की प्राप्ति है जबकि सामाजिक सर्वेक्षण व्यावहारिक तौर पर उपयोगी बनने परविशेष जोर देता है।

सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार

विषय वस्तु, प्रकृति, समयावधि, उद्देश्य के आधार पर सामाजिक सर्वेक्षण के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख अलग अलग विद्वानों ने अपने अपने ढंग से किया है। वेल्स ने सामाजिक सर्वेक्षण के दो प्रकारों का उल्लेख किया है-

1. **प्रचार सर्वेक्षण**- इस तरह के सर्वेक्षण जनता में जागृति उत्पन्न करने अथवा किसी भौतिक या अभौतिक वस्तु का प्रचार करने के उद्देश्य से किए जाते हैं। सरकारी योजनाओं को सफल बनाने के लिए इस प्रकार का सर्वेक्षण अत्यधिक लाभकारी होता है, क्योंकि सर्वेक्षण से जनता के मनोभाव या जन समाज के रुख का पता चल जाता है और उसी के अनुसार योजना का रूप निश्चित किया जा सकता है।

2. **तथ्य संकलन-** सर्वेक्षण इस तरह के सर्वेक्षण में तथ्यों को एकत्रित किया जाता है। इस श्रेणी के सर्वेक्षण दो प्रकार के हो सकते हैं। पहला वैज्ञानिक और दूसरा व्यावहारिक। वैज्ञानिक सर्वेक्षण में किसी घटना के संबंध में केवल ज्ञान की प्राप्ति अथवा सिद्धांतों के परीक्षण के लिए तथ्यों का संकलन किया जाता है। जबकि व्यावहारिक सर्वेक्षणों का मकसद किसी सामाजिक समस्या के हल के लिए आवश्यक तथ्यों का संकलन होता है।

सर्वेक्षण के अन्य प्रकार

1. **जनगणना सर्वेक्षण-** इस प्रकार के सर्वेक्षण में किसी विषय या संबंधित सभी व्यक्तियों अर्थात समस्त जनसंख्या से संपर्क स्थापित करके सूचना प्राप्त की जाती है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के सर्वेक्षण में संपूर्ण जनसंख्या में से कुछ सैंपल चुनकर अध्ययन करने के स्थान पर सभी को अध्ययन की इकाई मान लिया जाता है। उनसे सूचना एकत्रित कर निष्कर्ष निकाला जाता है। बहुत छोटे या सीमित समुदायों का अध्ययन इसी प्रकार के सर्वेक्षण से किया जाता है। बड़े समुदायों का अध्ययन इस रूप में करने के लिए अत्याधिक धन, समय तथा कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। जिसका भार उठाना सरकार या अन्य किसी आर्थिक रूप से संपन्न संस्था से ही संभव है। भारत में प्रत्येक 10

साल में इस प्रकार का सर्वेक्षण सरकार कराती है। जिसे जनगणना कहते हैं। इसमें प्रत्येक परिवार तथा व्यक्ति के बारे में अनेक महत्वपूर्ण जानकारी हासिल की जाती हैं। यह सर्वेक्षण एक तरह से सरकार की सभी योजनाओं के लिए आधार होता है।

2. **सैंपल सर्वेक्षण-** यह सर्वेक्षण जनगणना सर्वे का विपरीत रूप कहा जा सकता है। वह इसलिए क्योंकि इसमें जनसंख्या की प्रत्येक इकाई का अध्ययन न करके केवल कुछ ऐसी इकाईयों का अध्ययन किया जाता है, जो संपूर्ण जनसंख्या का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। सैंपलों का जो निष्कर्ष निकलता है उसी को संपूर्ण जनसंख्या पर लागू कर दिया जाता है। आधुनिक जटिल व विराट समुदायों का अध्ययन करते समय इस प्रकार का सर्वेक्षण किया जाता है। क्योंकि विस्तृत क्षेत्र के सभी मनुष्यों या इकाईयों का अध्ययन करना अत्यंत कठिन है। संपूर्ण जनसंख्या में से कुछ प्रतिशत इकाईयों को सैंपल के रूप में चुन लिया जाता है और केवल उनका अध्ययन करके संपूर्ण इकाई के विषय में निष्कर्ष निकाल लिया जाता है। उदाहरण के लिए चुनावी नतीजों की संभावना जानने के लिए किए जाने वाले सर्वेक्षण इसी प्रकार किए जाते हैं। इस पुस्तक में हम मुख्य रूप से इसकी प्रकार के सर्वेक्षणों के बारे में बात कर रहे हैं।

3. **नियमित या कार्यवाहक सर्वेक्षण-** जब कोई स्थाई विभाग या संस्था कुछ विषयों पर नियमित रूप से सर्वेक्षण करती रहती है तो उसे नियमित सर्वेक्षण कहते हैं। उदाहरण के लिए भारत सरकार जनगणना विभाग और रिजर्व बैंक के जरिए जनसंख्या, साख सुविधा, बैंकों की संपत्ति आदि के संबंध में समय समय पर नियमित रूप से सर्वेक्षण कराती है। इसके विपरीत जब किसी तात्कालिक आवश्यकता या उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी अस्थाई इंतजाम के जरिए सर्वेक्षण किया जाता है तो उसे कार्यवाहक सर्वेक्षण कहते हैं। इसमें कोई स्थाई प्रबंध किए बिना अस्थाई तौर पर किसी अध्ययन दल की नियुक्ति कर तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण कराया जाता है। किसी योजना को बनाते समय कई बार ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न बीच मे ही उठ खड़े होते हैं, जिनके विषय में आवश्यक जानकारी हासिल किए बिना योजना को व्यवस्थित व अंतिम रूप देना संभव नहीं होता। ऐसे हालात में कार्यवाहक सर्वेक्षण उपयोगी साबित होते हैं।
4. **अंतिम और पुनरावर्तक सर्वेक्षण-** यदि अध्ययन का विषय बहुत कम परिवर्तनशील और अत्याधिक सीमित है तो उसके संबंध में एक बार अध्ययन करके ही कुछ अंतिम निष्कर्ष निकाल लिए जाते हैं। ऐसे सर्वेक्षण को अंतिम सर्वेक्षण कहते हैं। ज्यादातर सामाजिक परिस्थितियां, तथ्य या दशाएं

परिवर्तनशील होने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि एक ही विषय पर बार बार सर्वेक्षण किए जाएं। जिससे परिवर्तित हालात या दशाओं के संदर्भ में पुराने सर्वेक्षणों के निष्कर्षों में आवश्यक सुधार, बदलाव या परिवर्द्धन किया जा सके। इस उद्देश्य से एक ही विषय पर बार बार सर्वेक्षण कार्य को दोहराए जाने वाले सर्वेक्षण को पुनरावर्तक सर्वेक्षण कहते हैं। इस प्रकार के सर्वेक्षण का आधार वही रहता है जैसा कि उससे पहले किए नए सर्वेक्षण का था, जिससे दोनों की तुलना हो सके।

5. **गुणात्मक व गणनात्मक सर्वेक्षण-** जब किसी गुणात्मक विषय या घटना के संबंध में सर्वेक्षण किया जाता है जैसे जनमत, पक्षपात, प्रथा, संस्कार, मनोवृत्ति आदि तो उसे गुणात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। इसके विपरीत जब सर्वेक्षण का विषय गणनात्मक होता है तो उसे गणनात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। शिक्षा का विस्तार, शिक्षा का स्तर, जातीय संरचना, आर्थिक स्तर, तलाक की दर आदि ऐसे ही विषय हैं। जिनके बारे में संख्यात्मक तौर पर अर्थात संख्या में तथ्यों का एकत्रित कर अभिव्यक्त किया जा सकता है और निष्कर्ष निकाला जा सकता है।
6. **सार्वजनिक और गुप्त सर्वेक्षण-** वे सर्वे जिनमें जनता से कुछ भी छिपाया नहीं जाता, सार्वजनिक सर्वेक्षण कहलाते हैं। इनके विश्लेषण और नतीजों की रिपोर्ट भी सार्वजनिक की जाती है। शिक्षा-प्रसार, राष्ट्रीय

बचत योजना आदि के बारे में सर्वेक्षण इसी श्रेणी में आते हैं। इसके विपरीत कुछ इस प्रकार के विषय भी हो सकते हैं, जिनसे संबंधित तथ्यों को प्रकाशित करना राष्ट्रीय या प्रशासकीयरूप से हितकारी नहीं होता है। ऐसे सर्वेक्षणों में पूरी गोपनीयता बरती जाती है, इसलिए इन्हें गोपनीय सर्वेक्षण या गुप्त सर्वेक्षण कहते हैं।

सर्वेक्षण पद्धति के गुण

सामाजिक अनुसंधान के काम में एक से ज्यादा विधियों का प्रयोग किया जाता है। उनमें से सर्वेक्षण पद्धति एक है। दूसरी पद्धतियों की तुलना में सर्वेक्षण के अपने विशिष्ट गुण हैं, जिन्हें इस तरह पेश कर सकते हैं:

1. सर्वेक्षण पद्धति में अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन विषय के सीधे संपर्क में आता है। ऐसा इसलिए होता है कि इस विधि के तहत सर्वेक्षणकर्ता को अपने विषय से संबंधित परिस्थितियों तथा व्यक्तियों से सीधे तौर पर तथ्यों को एकत्रित करना पड़ता है। उद्देश्य पूर्ति के लिए अनुसंधानकर्ता को उनके साथ घनिष्ठ संबंध बनाना पड़ता है। सर्वेक्षण की सफलता इसी पर निर्भर करती है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि सर्वेक्षण पद्धति दार्शनिक, केवल पुस्तकीय अथवा सैद्धांतिक ज्ञान पर आधारित नहीं होती।

2. सर्वेक्षण पद्धति में किसी विषय के प्रति विशिष्ट झुकाव की संभावना कम हो जाती है। इस पद्धति के तहत अनुसंधानकर्ता अपने विषय से संबंधित आंकड़ों तथा तथ्यों को उनके यर्थाथ रूप में एकत्रित करने का प्रयास करता है। जिसके नतीजे में उसका निष्कर्ष विषय पर केंद्रित और यर्थाथ के करीब होता है।
3. सामाजिक सर्वेक्षण इस प्रकार की सामाजिक घटनाओं के विषय में अध्ययन कार्य को संभव बनाता है, जिनके विषय में घर बैठे अध्ययन नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए देश विभाजन के बाद विभिन्न प्रदेशों में बसे शरणार्थियों के जीवन में किस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं, या उनके एक प्रदेश विशेष में बस जाने के कारण वहां के मूल निवासियों के जीवन प्रतिमान में कौन कौन से प्रभाव पड़े हैं, इसका अध्ययन घर बैठे नहीं किया जा सकता। यह अध्ययन तभी हो सकता है जब सामाजिक सर्वेक्षण विधि की सहायता ली जाए।
4. सर्वेक्षण पद्धति वैज्ञानिक स्थिति को प्राप्त करने में अधिक सफल साबित हुई है। प्राकृतिक विज्ञान में इस्तेमाल की जाने वाली पद्धतियों के मुताबिक सर्वेक्षण पद्धति में भी ऐसी प्रणालियों का विकास हो रहा है, जिनके अनुसार आवश्यकतानुसार एक सामाजिक घटना को नियंत्रित किया जा सकता है। वैसे भी सामाजिक सर्वेक्षणकर्ता अपने अध्ययन

विषय या घटना को जैसी वह है, उसी रूप में देखने का प्रयास करता है। इससे घटना का वास्तविक रूप ज्यों का त्यों बना रहता है और घटना के संबंध में यथार्थ निष्कर्ष निकालना संभव होता है।

5. सर्वेक्षण पद्धति प्रत्यक्ष ज्ञान हासिल करने का एक अत्यंत निर्भर करने योग्य विश्वसनीय साधन है। इसका कारण यह है कि इसमें सर्वेक्षणकर्ता का अपने विषय से सीधा संपर्क स्थापित हो जाता है। वह सीधा संपर्क काल्पनिक विचारों को अध्ययन क्षेत्र के तहत नहीं आने देता या इस प्रकार के विचारों की संभावनाएं कम हो जाती है। यदि हम औद्योगिक नगरों की मजदूर बस्तियों में बसे मजदूरों की दशाओं के बारे में या गांवों के भूमिहीन खेतिहार मजदूरों में व्याप्त गरीबी के विषय में या शिक्षण संस्थाओं में दलित बच्चों की वास्तविक स्थिति के संबंध में हकीकत जानना चाहते हैं तो सामाजिक सर्वेक्षण पद्धित ही सर्वोत्तम पद्धति है।

सर्वेक्षण पद्धति की सीमाएं

सर्वेक्षण पद्धति की खूबियों के बावजूद उसकी अपनी सीमाएं हैं। इन्हें हम इस तरह समझ सकते हैं।

1. सर्वेक्षण पद्धति के जरिए केवल उन्हीं घटनाओं का अध्ययन किया जा सकता है जो कि दिखाई देने वाली हैं। लेकिन ज्यादातर सामाजिक घटनाएं ऐसी नहीं होतीं। अर्थात वे अमूर्त तथा भावनात्मक होती हैं। भावनात्मक तथा

अमूर्त घटनाओं का अध्ययन सर्वेक्षण पद्धति से संभव नहीं है। हर सामाजिक घटना के स्थल पर उपस्थित होकर स्वयं निरीक्षण कना प्रत्येक अवस्था में अनुसंधानकर्ता के लिए संभव नहीं होता और उस अवस्था में सामाजिक सर्वेक्षण की उपयोगिता स्वतः ही खत्म हो जाती है।

2. सामाजिक सर्वेक्षण अधिक खर्चीला और समय साध्य है।सामाजिक सर्वेक्षण में धन और समय दोनों की बहुत जरूरत होती है। सर्वेक्षण कार्य के लिए नियुक्त कार्यकर्ताओं के निवास, वेतन, प्रशिक्षण तथा निरीक्षण आदि की व्यवस्था में और प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार व चित्रमय प्रदर्शन आदि में बहुत धन खर्च होता है। इसी वजह से अनेक सर्वेक्षण कार्य आर्थिक साधन के अभाव के कारण बीच में ही रुक जाते हैं।इसी प्रकार विस्तृत सर्वेक्षणों में कई साल लग जाते हैं और इस लंबे समय के दौरान समान उत्साह और संयम बनाए रखना मुश्किल है।

3. सर्वेक्षण की प्रक्रिया में एक पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार खोज करनी पड़ती है। जिसके नतीजे में कभी कभी संपूर्ण सर्वेक्षण कार्य यंत्रवत चलता रहता है और अनुसंधानकर्ताओं के लिए अपनी बुद्धि के स्वतंत्र प्रयोग का दायरा बहुत सिमट जाता है।

4. सामाजिक सर्वेक्षण से मिले नतीजों की विश्वसनीयता पर संदेह किया जाता है क्योंकि सर्वेक्षण के दौरान व्यक्तिगत पसंद-नापसंद, पक्षपात, संस्कार, पूर्वाग्रह, पूर्व धारणाओं से अपने को पूरी तरह अप्रभावित रखना सर्वेक्षणकर्ता के लिए कठिन होता है। सर्वेक्षण की सफलता सर्वेक्षकों की

ईमानदारी, कार्य कुशलता, तथ्यों की विषय से संबद्धता, सूचनादाताओं के सहयोग और सर्वेक्षण की प्रविधियों की उपयोगिता पर निर्भर होती है। इन सबको एक साथ प्राप्त करना बहुत कठिन है।

5. सामाजिक घटनाएं अमूर्त तथा अत्याधिक बिखरी हुई होती हैं, इसीलिए एक सर्वेक्षण के जरिए उन्हें किसी समान सूत्र में बांधना अत्यंत कठिन होता है। यही कारण है कि सर्वेक्षण स्वयं असंबद्धत तथा बिखरे हुए होते हैं। उन्हें एक कड़ी में पिरोकर किसी निश्चित सिद्धांत का निर्माण अपने आप में एक समस्या बन जाता है। इस समस्या के समाधान के प्रति सामाजिक वैज्ञानिक अब ज्यादा जागरुक हैं और उनकी सफलता पर ही सामाजिक विज्ञान की प्रगति का पथ अधिक प्रशस्त होने की उम्मीद की जाती है।

भारत में सामाजिक शोध

सामाजिक शोध भारत में ज्यादा पुराना विषय नहीं है। पहले कुछ सरकारी प्रयत्नों से किए गए शोध कार्य ही होते थे। सच तो यह है कि समाजशास्त्र विषय ही हमारे देश में दुनिया के अन्य देशों की तुलना में काफी बाद आया।यही वजह है कि सामाजिक शोध को लेकर भी लोगों का झुकाव हमारे यहां पहले अत्याधिक सीमित था। अर्थशास्त्री, मजदूरों तथा गांव वालों के जीवन से संबंधित कुछ शोध कार्य जरूर करते थे। अविकसित अध्ययन पद्धति तथा प्रविधियां उनके शोध कार्यों को यथार्थ रूप में वैज्ञानिक बनाने में सहायक नहीं होती थीं। भारत में

सामाजिक शोध के बारे में समझने के लिए हम बिंदुवार चर्चा कर सकते हैं।

भारत में सामाजिक शोध की प्रगति- भारत में सामाजिक शोध की प्रगति के इतिहास को हम मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। एक तो ब्रिटिशकालीन भारत में सामाजिक शोध और दूसरा स्वतंत्र भारत में सामाजिक शोध।

ब्रिटिशकालीन भारत में सामाजिक शोध

ब्रिटिशकालीन भारत में सामाजिक शोध के क्षेत्र में प्रगति न के समान थी और जो भी काम हुए उन्हें शोध न कहकर सर्वेक्षण कहना ही उचित होगा। इनमें से अधिकतर शोध कार्य सरकार ने प्रशासन संबंधी तत्कालीन नीतियों के आधार पर कराए थे। ब्रिटिशकाल में वे ही सामाजिक समस्याएं अध्ययन का विषय बन सकीं जिनका सीधा संबंध राज्य की राजनैतिक, आर्थिक अथवा अन्य आवश्यक नीतियों से था इन नीतियों के निर्धारण के लिए जनजीवन से संबंधित विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की जरूरत होती थी। इन्हीं सूचनाओं को जुटाने के लिए भिन्न भिन्न आयोग नियुक्त किए गए। जिन्होंने सर्वेक्षण पद्धति के आधार पर अकाल, श्रम अवस्था, स्वास्थ्य, शिक्षा,ग्रामीण समस्या आदि के संबंध में अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट्स पेश कीं। विभिन्न विषयों के संबंध में सांख्यिकीय विवरण प्राप्त करने के लिए भी एक केंद्रीय सचिवालय 1870 में खोला गया। सन 1891 में ब्रिटिश सरकार ने पहली

जनगणना कराई, यह भी इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति थी। जनगणना रिपोर्ट से जनजीवन के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण पक्ष सामने आए। इससे शोध कार्य के लिए समाज विज्ञानियों को बहुत सी सामग्री प्राप्त हो गई। जनगणना हर 10 साल में होने लगी और उसकी रिपोर्ट्स से जनसंख्यात्मक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के अलग अलग पक्षों व समस्याओं के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलने लगी। इन सरकारी प्रयासों के अलावा भी ब्रिटिशकाल में कई मानव शास्त्रियों ने भारतीय जनजातियों के संबंध में कई महत्वपूर्ण शोध किए। इन अध्ययनों से सामाजिक शोध की प्रविधियों जैसे निरीक्षण, साक्षात्कार, व्यक्तिगत जीवन, अध्ययन पद्धति में महत्वपूर्ण सुधार तथा पर्याप्त विकास हुआ। सामाजिक शोध के क्षेत्र में सर रिजले का द टोसि 1906, एस.सी.राय का द मुंडास एंड देयर कंट्री 1912, जेएस मिल्स का द रिनगमा नागा 1936, इंद्रजीत सिंह का गौंडवाना एंड गौंड्स 1944, उल्लेखनीय शोध कार्य हैं।

इस विवेचना से स्पष्ट होता है कि ब्रिटिशकालीन भारत में जो सामाजिक शोध कार्य हुए, उनकी उल्लेखनीय विशेषताएं निम्नलिखित थीं-

1- वे अकालों, श्रम अवस्थाओं, कृषि, शिक्षा आदि से प्रमुख रूप से संबंधित थे।

2- उस काल में सामाजिक शोध की पद्धति व प्रविधियां अत्यंत अविकसित थीं और सरकार ने भी उनको उन्नत करने की जरूरत महसूस नहीं की। जो भी तथ्य जुटाए गए

वे अधिकतर कम पढ़े लिखे तथा अप्रशिक्षित छोटे सरकारी कर्मचारियों से ली गई सूचना के आधार पर लिए गए थे। ग्रामीण स्तर पर तो यह स्थिति और भी शोचनीय थी, क्योंकि वहां कोटवार, नंबरदार, मुखिया, पुलिसमेन तथा पटवारी ने जो भी सूचनाएं दी, वही शोध का आधार बन गई।

3- ब्रिटिशकालीन शोध कार्यों की एक और उल्लेखनीय विशेषता थी कि शोध कार्य का उद्देश्य राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति करना था। केवल उन्हीं तथ्यों को जुटाने का प्रयास किया गया जो अंग्रेज शासकों के हित साधन में सहायक थे। उस काल में हुए शोध कार्यों से भारतीय जनजीवन में व्याप्त विभिन्न सामाजिक समस्याओं की वास्तविकताओं का आभास नहीं होता था।

4- शोध कार्यो का आधार कुछ सांख्यिकीय आंकड़े मात्र थे, क्योंकि शोध की अन्य प्रविधयों का विकास तथा प्रचलन नहीं हो पाया था।

5- इस दिशा में मानव शास्त्रियों का योगदान सराहनीय था, लेकिन उनका भी अध्ययन अधिकतर भारतीय जनजातियों और पिछड़ी जातियों तक ही सीमित रहा।

स्वतंत्र भारत में सामाजिक शोध

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक शोध को विकास के कई अवसर मिले, क्योंकि समाज को बेहतर बनाने के लिए सरकार और सामाजिक संस्थाओं में उत्साह था। अपना देश अपना राज, इस भावना ने नए उत्साह के साथ

काम करने को प्रेरित किया। अंग्रेज इस देश को आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक तौर पर खोखला बनाकर गए थे। इतना ही नहीं वे देश के टुकड़े भी कर गए थे। देश और जनजीवन को समस्याएं घेरे हुए थीं। यह जरूरी था कि उन समस्याओं के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान शोध कार्यों के जरिए प्राप्त किया जाए ताकि वैज्ञानिक ढंग से उन समस्याओं का निराकरण किया जा सके। इसलिए सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं तथा समाज वैज्ञानिकों ने शोध के महत्व को स्वीकार करते हुए इसकी प्रगति के लिए कदम उठाए। सरकार ने कल्याणकारी राज्य की स्थापना को साकार रूप देने के लिए शोध कार्यों को आयोजित तथा प्रोत्साहित किया। विभिन्न विश्वविद्यालयों में सामाजिक शोध कार्य शुरू हुए और योजना आयोग ने देश के अविकसित भागों के विषय में तथ्य प्राप्त करने के लिए अनुसंधान को प्रोत्साहित किया।

योजनाओं के सिद्धि के लिए

विकासशील देश की प्रगति योजनाओं की सफलता पर निर्भर करती है। भारत के संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। सामाजिक और आर्थिक योजनाएं तब तक सफल नहीं हो सकतीं जब तक जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त न हो। सहयोग तभी प्राप्त हो सकता है। जबकि योजना के प्रति आम जनता में जागरुकता पनपे और वे योजना को अपनी योजना मान लें। हमारे देश में योजनाओं की असफलता का प्रमुख कारण यही है कि हमारी समस्त

योजनाएं सरकार की योजनाएं बनकर रह जाती हैं, वे जनता की योजनाएं नहीं बन पातीं। सरकार अपने साधनों से हजारों समितियां बना सकती हैं और विकासखंडों में लागू कर सकती है लेकिन योजनाओं की सफलता ग्रामीण जनता के सक्रिय सहयोग पर निर्भर करती है। सरकारी अमले का रवैया भी ऐसा नहीं होता कि योजना सरकारी नहीं बल्कि जनता की बन सके। लिहाजा योजनाओं के प्रति ग्रामीण जनता उदासीन रहती है। योजनाओं की सफलता के लिए जरूरी है कि ग्रामीण क्षेत्र की जनता के मनोभाव, आशाओं और अभिलाषाओं के संबंध में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया जाए। सामाजिक संगठन को इस योग्य बनाया जाए कि जनता में जागरुकता आए और वह नए आदर्शों और योजनाओं को उचित रूप में ग्रहण कर सके। ये काम सामाजिक शोध के जरिए संभव है।

भारत में सामाजिक सर्वेक्षण संस्थाएं

योजना आयोग जिसे अब नीति आयोग नाम मिल चुका है, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, भारतीय मनोविज्ञान अनुसंधान परिषद, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, भारतीय सामुदायिक विकास संस्थान तथा नेशनल सैंपल सर्वे निदेशालय आदि प्रमुख सरकारी संस्थाएं हैं जो विभिन्न प्रकार के शोध कार्यों को कराती हैं और प्रोत्साहित भी करती हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यूजीसी भी छात्रवृत्तियों के जरिए आर्थिक सहायता देकर विभिन्न शोध

कार्यों को बढ़ावा देता है। इन सरकारी संस्थानों के अलावा अन्य स्वतंत्र शोध केंद्र भी अनेक महत्वपूर्ण शोध कार्य करते हैं। इनमें टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज मुंबई, देहली स्कूल ऑफ सोशल वर्क, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन दिल्ली, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ सोश्यल साइंस एंड रिसर्च आदि ऐसे संस्थान हैं जो सामाजिक शोध की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इसके अलावा मप्र, उप्र, आंध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, ओडिशा, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, झारखंड आदि राज्यों में जनजातीय शोध संस्थान स्थापित हैं जहां जनजातीय कला, भाषा, संस्कृति जीवन शैली आदि पर गंभीर शोध कार्य होते रहे हैं। पश्चिम बंगाल में सांस्कृतिक शोध संस्थान ने राज्य के जनजातीय जीवन के कई पहलुओं पर महत्वपूर्ण शोध कर रिपोर्ट प्रकाशित की हैं। उदयपुर का 'भारतीय लोक कला मंडल' भी अग्रणी गैर सरकारी संगठन है जिसने आजादी के पहले के मध्य भारत तथा राजस्थान की जनजातियों की संस्कृति के बारे में महत्वपूर्ण शोध किया है। इसके अलावा व्यक्तिगत आधार पर भी सामाजिक शोध कार्य करने में कई लोगों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनमें श्यामाचरण दुबे, श्रीनिवास, अक्षय रमणलाल देसाई, दत्तात्रेय गोपाल कर्वे, धुरिए आदि विख्यात समाज शास्त्रियों का योगदान उल्लेखनीय रहा है।

भारत में सामाजिक शोध की आवश्यकता

भारत जैसे तेजी से विकसित देशों में सामाजिक शोध की आवश्यकता विकसित देशों की तुलना में ज्यादा है। क्योंकि भारत में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याएं ज्यादा हैं। यह समस्याएं प्रगति में बाधक हैं। स्वस्थ सामाजिक परंपरा का विकास करना आवश्यक है। यह काम सामाजिक शोधों और उनके निष्कर्षों की सहायता से किया जा सकता है। आइए इस बात को और बेहतर ढंग से समझने की कोशिश करें:

1. अज्ञानता का नाश करने के लिए- स्वतंत्रता प्राप्ति केबाद 70 वर्ष का लंबा समय गुजर चुका है, फिर भी अशिक्षा को खत्म नही किया जा सका है। अशिक्षा और नकारात्मक परंपराओं के प्रति जारी अंधविश्वास के कारण अज्ञानता को भी खत्म नहीं किया जा सका है। ज्यादातर जनता यहां तक कि उच्च शिक्षित लोग भी जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद और प्रांतवाद जैसे न जाने कितने नकारात्मक वादों के शिकार हैं और इसी वजह से अनावश्यक संघर्ष के हालात बनते रहते हैं। इससे राष्ट्रीय एकता को बार बार खतरा पैदा हो जाता है। यह खतरा स्वस्थ स्वरूपों के प्रति अज्ञानता के कारण होते हैं। इनसे छुटकारा पाने के लिए सामाजिक संबंधों, विभिन्न प्रांतों तथा क्षेत्र और भाषा भाषियों के बीच वास्तविक ज्ञान का प्रसार परम आवश्यक है। यह काम सामाजिक शोध के विकास पर निर्भर करता है।

2. **अंध विश्वासों का नाश करने के लिए-** रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास आज भी भारतीय जनजीवन में समाए हुए हैं। बाल विवाह अब भी होते हैं और विधवा विवाह को अब भी बुरा माना जाता है। हालांकि हालात पहले से काफी बेहतर हुए हैं। छुआछूत को न केवल माना जाता है बल्कि इस अमानवीयता के औचित्य को प्रमाणित करने की भी कुचेष्टा की जाती है। भाग्य को ही सब कुछ मान लिया जाता है।

3. **पिछड़ापन खत्म करने के लिए-** राजनीतिक दल जातिवाद को भड़काकर चुनाव जीतने की उम्मीद करते हैं, बहुधा सफल भी हो जाते हैं। ये सब न केवल अंधविश्वास के प्रतीक हैं बल्कि पिछड़ेपन के भी प्रतीक हैं। इनसे सामाजिक जीवन में अनेक समस्याएं पैदा हुई हैं। इन्हें खत्म करके समाज जीवन में ज्ञान का विस्तार किया जा सकता है और प्रगति भी हासिल की जा सकती है। इस मामले में भी सामाजिक शोध की सहायता की जरूरत है।

4. **सामजिक बदलाव के अध्ययन के लिए-** अंतर सम्प्रदाय और अंतरजातीय विवाहों में डटकर मुकाबला हो रहा है और अभिभावकों को पुराने मूल्यों को छोड़कर अपनी संतानों के नए मूल्यों को न चाहते हुए भी धीरे धीरे स्वीकार करना पड़ रहा है। एक तरह से समाज में परिवर्तनों की बाढ़ सरीखी आई है, लेकिन इस बाढ़ के विनाशकारी पानी को उचित दिशा में मोड़कर समाज हित में उपयोग करने की व्यवस्था नहीं होगी तो समाज जीवन के लिए खतरा पैदा होना लाजिमी है। इस दिशा का निर्धारण सामाजिक

परिवर्तनों के लिए तथा परिणामों के संबंध में किए गए शोधों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर किया जा सकता है।

5. **सामाजिक समस्याओं का सफल हल निकालने के लिए-** गरीबी, अपराध, बेकारी, बीमारी, वर्ग संघर्ष, राजनीतिक तनाव आदि अनेक ऐसी सामाजिक समस्याएं हैं, जो लगभग सभी समाजों में सामान्य रूप से पाई जाती हैं। लेकिन यह समझना गलत होगा कि इन समस्याओं की वजह सभी समाजों में एक जैसी होती होंगी। सामाजिक समस्याओं की प्रकृति व कारणों का संबंध समाज विशेष में पाई जाने वाली आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों से होता है। ये हालात अलग अलग समाजों में अलग अलग होते हैं। एक के कारण या परिणामों को दूसरों का भी कारण और परिणाम मान लेना सही नहीं होगा। अन्य प्रगतिशील देशों में सामाजिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर गहन शोध कार्य हुए हैं। लेकिन उनके निष्कर्षों को हम भारतीय परिस्थितियों में ज्यों का त्यों लागू नहीं कर सकते, क्योंकि यहां की परिस्थितियां वहां से भिन्न हैं। जब तक समस्याओं के संबंध में हमें वैज्ञानिक ज्ञान नहीं होगा तब तक उनका सफल हल ढूंढना हमारे लिए मुश्किल होगा। जरूरत इस बात की है कि भारतीय सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विभिन्न सामाजिक समस्याओं के संबंध में समुचित शोध कार्यों का आयोजन किया जाए। जिससे उनके संबंध में हासिल जानकारी और वास्तविक ज्ञान के आधार पर समस्याओं के वैज्ञानिक हलों को तलाशने में हमें सफलता मिल सके।

6. **प्रभावपूर्ण सामाजिक नियंत्रण के लिए-** हर प्रगतिशील देश और समाज में सामाजिक नियंत्रण की समस्या हर दौर में नए रूप में सामने आती है। इसकी वजह है कि सामाजिक नियंत्रण के पुराने साधन बदली परिस्थितियों में पहले जैसे प्रभावकारी नहीं रह जाते। नए साधनों को लागू करने की आवश्यकता होती है। भारत में भी इस आवश्यकता को समय समय पर महसूस किया जाता है। पहले भारतीय समाज में नियंत्रण के साधनों के रूप में प्रथा, परंपरा, धर्म, पंचायत आदि पर्याप्त थे। लेकिन औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के साथ नए हालात बने और उनमें नियंत्रण के ये साधन लगातार कमजोर होते चले गए। उनकी जगह कानून, पुलिस, कोर्ट, सेना आदि को सामाजिक नियंत्रण के साधनों के तौर पर प्रयोग में लाने की जरूरत पड़ने लगी। इन साधनों को किस प्रकार अधिक महत्वपूर्ण बनाकर अनुशासित राष्ट्र का विकास कया जाए, यह आज बड़ी समस्या और चुनौती है। नए साधनों के विषय में और अनुशासनहीनता के संबंध में गहन अनुसंधान की जरूरत है। सामाजिक शोध इस दिशा में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकता है।

7. **राष्ट्रीय एकता की वृद्धि के लिए-** भारत एक कल्याणकारी राज्य के रूप में विकसित हो रहा है। लेकिन जनजीवन में व्याप्त जाति, सम्प्रदाय, भाषा आदि के भेदभाव ऐसी समस्याएं हैं, जो विकसित राष्ट्र के लिए बड़ी बाधाएं हैं। जब तक इन व्याधियों को दूर नहीं किया जाएगा राष्ट्रीय एकता का सपना वास्तव में हकीकत से दूर बना रहेगा। जरूरी है

कि हम इन समस्याओं के बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करें और उन्हें जड़ से उखाड़ने के प्रयास किए जा सकें इस काम के लिए समाज की संरचना का पूरा ज्ञान जरूरी है और इस दिशा में सामाजिक शोध हमारी बड़ी मदद कर सकता है।

भारत में सामाजिक सर्वेक्षण

भारत में सामाजिक सर्वेक्षण आंदोलन के विकास का वही इतिहास है जो सामाजिक शोध का है। यदि वास्तव में देखा जाए तो भारत में सर्वेक्षण आंदोलन की प्रगति अन्य विकासशील देशों की तुलना में धीमी गति से हुई। सामाजिक सर्वेक्षणकर्ताओं को कईसीमाओं में रहकर काम करना पड़ता है। सबसे बड़ी दिक्कत आर्थिक समस्याएं और जनता की उदासीनता हैं। दूसरी बात यह है कि भारत में असंख्य सामाजिक संस्थाएं हैं, जो अपने जटिल रूप में विविध समस्याओं को पेश करती हैं और उनके विषय में सर्वेक्षण करने का काम वास्तव में कठिन है। इतना ही नहीं, जनता की अज्ञानता और रूढ़िवादिता के कारण सूचनाओं को जुटाना भी एक समस्या है। जनता की उदासीनता सर्वेक्षणकर्ता के उत्साह को ठंडा करने के लिए काफी है। इसके बावजूद बीते करीब छह दशक में भारत में सामाजिक सर्वेक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं और वे योजनाओं के तैयार किए जाने में मददगार भी साबित हुए हैं।

भारत में सामाजिक सर्वेक्षण का विकास

भारत में सामाजिक सर्वेक्षण के विकास को दो भागों में बांटा जा सकता है। पहला ब्रिटिशकालीन भारत में सामाजिक सर्वेक्षण और दूसरा स्वतंत्र भारत में सामाजिक सर्वेक्षण। इन दोनों कालों में इस सर्वेक्षण के विकास क्रम को हम इस तरह पेश कर सकते हैं:

ब्रिटिश काल में सामाजिक सर्वेक्षण- अंग्रेज भारत में व्यापारी के रूप में आए थे और अंत तक व्यापारिक मनोवृत्तियों को त्याग नहीं सके। एक व्यापारी सदा अधिकतम लाभ चाहता है। ब्रिटिश शासकों ने भारत का अधिकतम आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण किया। जनता की समस्याओं को हल करने के लिए आवश्यक कदम उठाना उनका लक्ष्य नहीं था। उन्होंने सामाजिक सर्वेक्षण की आवश्यकता को ज्यादा महसूस नहीं किया। लेकिन विशेष परिस्थितियों जैसे अकाल, मजदूर आंदोलन, ग्रामीण बेकारी, स्वास्थ्य आदि के विषय में उन्होंने समय समय पर सूचनाएं जुटाने के लिये शाही आयोग बनाए। इन आयोगों ने सरकार की जरूरत के मुताबिक जानकारियां जुटाकर रिपोर्ट पेश कीं। ब्रिटिश काल में सामाजिक सर्वेक्षण का विकास सीमित ही रहा। हालांकि अलग अलग प्रांतों में जनता से सबंधित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषयों पर सूचाएं एकत्रित करवाकर अलग अलग गजेटियर्स तैयार कराए गये। सन 1850 में सांख्यिकीय सचिवालय की स्थापना की गई और 1891 से

हर 10 साल में भारतीय जनगणना रिपोर्ट प्रकाशित की गई। सामाजिक सर्वेक्षण के क्षेत्र में जनगणना रिपोर्ट का अत्याधिक महत्व है। इन रिपोर्ट से केवल देश की जनगणनात्मक सरंचना का ही नहीं बल्कि अनेक सामाजिक व सांस्कृतिक तथ्यों का ज्ञान होता है।

ब्रिटिशकाल में कुछ व्यक्तिगत प्रयत्नों ने भी सामाजिक सर्वेक्षण के विकास में अपना सहयोग प्रदान किया। प्रख्यात पुस्तक -इकोनॉमिक ट्रांजीशन इन इंडिया में सन 1913 में सर मोरीसन ने यह सुझाव दिया कि मद्रास राज्य के कुछ गांवों का समाजशास्त्रीय तथा सांख्कीय सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। कृषि निदेशक कीटिंग ने 1912 में अपनी पुस्तक में लिखा कि उनकी किताब भविष्य में होने वाले अनुसंधानों में सहायक सिद्ध होगी। इन सुझावों के आधार पर मद्रास तथा बंबई राज्यों में डा. जी. स्लेटर ने गांवों के सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण किए जो उस समय के सर्वेक्षणों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पंजाब के आर्थिक अनुंसधान बोर्ड का योगदान भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। सन 1921 में लाहौर दुग्ध पूर्ति के एक सर्वेक्षण से आरंभ करके इस बोर्ड ने पंजाब के हर जिले से एक एक गांव को चुनकर 29 गांवों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में 20 पेज की प्रश्नावली की सहायता से ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे खेती,जोत,कर्जदारी, बाजार आदि से संबंधित सूचनाओं को जुटाया गया।

सन 1928 में भारतीय कृषि के शाही आयोग ने इस बात पर जोर दिया कि आर्थिक परिवर्तनों की प्रकृति तथा

मात्रा को जानने के लिए जहां कहीं भी संभव हो सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण कराया जाए। सन 1929-30 में हैदराबाद के प्रोफेसर एस. केशव आयंगर ने चार जिलों के 12 गांवों में बड़े पैमाने पर सर्वे कराया गया। उन्होंने इसमें साक्षात्कार पद्धति को अपनाया। सन 1927-28 में प्रो. डी.आर.गाडगिल ने पुणे शहर का नागरिक सर्वेक्षण किया। जो अपने समय का अत्यंत उल्लेखनीय अध्ययन था। इसके बाद 1932 से 1952 तक प्रो. गाडगिल के निर्देशन में द गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पोलिसी एंड इकोनॉमिक्स ने भी महत्वपूर्ण सर्वेक्षण कार्य किए। भारत की विभिन्न जनजातियों के समाजों का सर्वेक्षण कई मानव शास्त्रियों ने किया। सन 1906 में सर रिजले ने टोडा जनजाति का, सन 1912 में राय ने मुंडा जनजाति का और 1936 में मिल्स ने नागा जनजाति का सर्वेक्षण कर अध्ययन किया।

स्वतंत्र भारत में सामाजिक सर्वेक्षण

आजादी के बाद भारत में सामाजिक सर्वेक्षण का विकास पर्याप्त तेजी से होने लगा। योजनाओं के निर्माण में सर्वेक्षण के महत्व को भारत सरकार ने स्वीकार किया और इसीलिए विभिन्न सरकारी विभागों ने न केवल सर्वेक्षण का आयोजन किया बल्कि निजी संस्थाओं या व्यक्तियों के किए सर्वेक्षणों को भी आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया गया।इस दिशा में सरकारी प्रयासों में सबसे उल्लेखनीय प्रयास में 1950 में भारत सरकार ने नेशनल सैंपल सर्वे निदेशालय की स्थापना की।योजना आयोग की इच्छानुसार

पंचवर्षीय योजनाओं को बनाने के लिए आवश्यक सूचनाओं तथा तथ्यों को एकत्रित करना इस निदेशालय का प्रमुख कार्य है। निदेशालय ने पहला सर्वेक्षण चक्र 1950 में शुरू किया जो 1951 में पूरा हुआ। इसी तरह के सर्वेक्षण इस संस्थान ने जनजीवन के संबंध में लगातार किए।इनमें परिवार का आकार, आय-व्यय का स्वरूप, बेरोजगारी, ग्रामीण खेतिहर मजदूर, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के संबंध में महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन किया जाता है।इस निदेशालय ने अखिल भारतीय सर्वेक्षणों के बजाय स्थानीय सर्वेक्षणों के जरिए अधिक यर्थाथ तथ्यों को संकलित करने का प्रयास किया।रिपोर्ट ऑफ द ऑल इंडिया एग्रीकल्चर लेबर इंक्वायरी 1954 में किया गया ऐसा ही महत्वपूर्ण सर्वे था। नेशनल क्रॉनिकल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च का नाम भी उल्लेखनीय है। इस संस्था ने महत्वपूर्ण सर्वेक्षण किए। इनमें दिल्ली में बचत संबंधी सर्वेक्षण के अलावा बड़े शहरों में किए गए सामाजिक आर्थिक अवस्थाओं के सर्वेक्षण भी शामिल हैं। यह सर्वे मुंबई, दिल्ली, चेन्नै, कानपुर आदि शहरों में किए थे।

जनमत संबंधी सर्वेक्षणों को बढ़ावा देने के लिए इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन की स्थापना की गई। यह संस्थान अपनी मासिक पत्रिका मंथली पब्लिक ओपिनियन के जरिए विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विषयों पर भारतीय जनमत का नजरिया पेश करता रहा है। द रिसर्च प्रोग्रेस कमेटी आफ प्लानिंग कमीशन के प्रयासों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। इस

कमेटी ने सर्वेक्षणों को प्रोत्साहित करने, समन्वित करने तथा आर्थिक सहायता देने में सराहनीय कार्य किया है। 1967 के अंत तक संपूर्ण भारत में 157 सर्वेक्षण योजनाओं को इस कमेटी ने मंजूरी दी थी। इसके अलावा कई सर्वेक्षण कार्य इस कमेटी ने कराए। इनमें पूना, हैदराबाद, दिल्ली, मद्रास, मुंबई, मुरादाबाद, शिवकाशी आदि में सामाजिक, आर्थिक, लघु उद्योगों पर केंद्रित सर्वे शामिल हैं। गांव तथा शहर की आर्थिक संरचना, सामाजिक गतिशीलता, मिल मालिक-मजदूर संबंधों पर केंद्रित सर्वेक्षण भी किए तथा बेरोजगारी और भूमि सुधार के विषयों पर भी सर्वेक्षण किए गए।

इस संबंध में नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च न्यू देहली का नाम फिर से लिया जा सकता है। जिसे औद्योगिक आर्थिक सर्वेक्षणों में गंभीर रूचि ली। इससे भारत में आर्थक अनुसंधान का नया अध्याय शुरू हुआ। अमेरिकन मॉडल के अनुरूप यह संस्थान अपने सर्वेक्षणों में विभिन्न प्रकार के तकनीकी विशेषज्ञों जैसै रसायनशास्त्री, इलेक्ट्रिक इंजीनियर, वन, यातायात, अर्थशास्त्र तथा सांख्यिकी के विशेषज्ञों की खोजों को समन्वित करने का प्रयास करता है। हर विशेषज्ञ सर्वेक्षण किए जाने वाले विषय से संबंधित वर्तमान स्थिति तथा उसकी विशेषताओं के संबंध में सूचना देता है और इन सभी सूचनाओं के आधार पर तथा अन्य तथ्यों को मिलाकर अंतिम रिपोर्ट तैयार की जाती है। जिससे वर्तमान स्थिति

तथा विकास की संभावित दिशा के संबंध में प्रयोग सिद्ध ज्ञान प्राप्त हो सके।

योजनाओं के निर्माण में सामाजिक सर्वेक्षण का महत्व

भारत विकासशील देश है और इसके लिए सामाजिक और आर्थिक योजनाएं निरंतर बनती रहती हैं। योजनाओं के निर्माण में सामाजिक सर्वेक्षणों का अत्यंत महत्व है। ब्रिटिश काल में इसके महत्व को स्वीकार नहीं किया गयालेकिन आजाद भारत में इसे स्वीकार किया गया। योजनाओं का निमार्ण और उनके अमल में सफलता सर्वेक्षणों के रचनात्मक सुझावों पर बहुत कुछ निर्भर करती है।योजनाओं की सफलता के लिए यह जरूरी है कि हमें विषयों के बारे मे सही सूचनाएं प्राप्त हो जाएं। जिससे हमें यह पता लग सके कि विकास कार्यक्रमों को हमें कहां कहां लागू करना है और योजना के लिए किस स्थान का क्या महत्व है? क्योंकि समस्या विशेष की गंभीरता सभी स्थानों पर एक जैसी नहीं हो सकती। वास्तविक आवश्यकताओं के मुताबिक योजनाओं पर अमल किए बिना देश का संतुलित विकास नहीं हो सकता। बतौर उदाहरण अगर पिछड़ी जातियों और जनजातियों के विकास पर अधिक जोर न दिया गया तो वे वर्ग हमेशा पीछे ही बने रहेंगे।यह देश के अन्य प्रगतिशील देशों की तरह विकास की राह में बाधा बनी रहेगी।यह माना जाता रहा है कि शहरों से ज्यादा गांवों में समस्याओं पर ध्यान देना ज्यादा जरूरी हैक्योंकि

ग्रामीण समुदाय शहरी आबादी की तुलना में लगभग सभी पैमानों पर सुविधाओं के लिहाज से कम रहा है।लेकिन ग्राम्य समुदाय की वास्तविक जरूरतें क्या हैं? किन समस्याओं का हल करने में प्राथमिकता दी जाए और उन समस्याओं को सबसे बेहतर तरीके से हल करने का उपाय क्या है? इन सभी विषयों के लिए तथ्ययुक्त और निर्भर योग्य सूचनाएं तथा आंकड़े हासिल करने के लिए सामाजिक सर्वेक्षण का महत्व है। योजना आयोग पंचवर्षीय योजनाएं बनाने के लिए सर्वेक्षण करने वाले सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों की मदद लेता रहा है। इनसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर आयोग को योजनाओं को व्यावहारिक रूप देने में अत्याधिक मदद मिलती है।

सर्वेक्षण के अध्ययन और विश्लेषण के बाद तैयार की गई रिपोर्ट में केवल तथ्यों औरआंकड़ों का क्रमबद्ध संकलन, विश्लेषण और व्याख्या भर ही नहीं होती,बल्कि अवस्थाओं को सुधारने के लिए व्यावहारिक सुझाव भी इसमें शामिल होते हैं, जो योजना के काम को और ज्यादा सरल बना देते हैं। भारत में सामाजिकआर्थिक योजनाओं की सफलता का एक उल्लेखनीय कारण यह है कि इन योजनाओं को लागू करने में जनता का पूर्व सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता, क्योंकि योजनाएं अवस्थाओं के अनुरूप नहीं होती और सरकारी योजना में अमले का हस्तक्षेप ज्यादा होता है। योजनाओं को जनता की योजना बनाने के लिए सामाजिक सर्वेक्षण मददगार साबित हो सकते हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक परिवर्तन की दिशा की ओर भी संकेत करता है। आजादी के बाद भारत में कई सामाजिक शक्तियों का उदय हुआ और सके चलते सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन हुए हैं। इन बदलावों के वास्तविक ज्ञान को हासिल किए बिना योजनाओं की सफलता संदिग्ध हो सकती है। यह वास्तविक ज्ञान सामाजिक सर्वेक्षण से हासिल किया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि समाज की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए परिवर्तन की दिशा को जानने के लिए तथा सामाजिक समस्याओं के व्यावहारिक हल के संबंध में वास्तविक ज्ञान हासिल करने के लिए सामाजिक सर्वेक्षण की मदद लेना अत्यावश्यक है, इससे क्रमबद्ध योजनाएं बनाने का काम आसान हो जाता है।

अध्याय 4

चुनावी सर्वेक्षण का इतिहास

जनमत संग्रहण और चुनाव

जार्ज मेलाप ने 1935 में एक सिद्धांत प्रतिपादित किया- किसी भी मुद्दे पर जन यानी पब्लिक का क्या विचार होगा, इसे जाना जा सकता है। उसी दौर में अमेरिका में जनमत संग्रहण पूल बना, जिसका तीव्र विरोध हुआ। अमेरिका में 1936 में राष्ट्रपति का चुनाव हो रहा था। चुनाव के पहले जनमत संग्रहण पूल ने जो भविष्यवाणी की परिणाम उससे उल्टा ही निकला। पूल की तीखी आलोचना हुई।

भारतीय चुनावों के संदर्भ में

वर्ष 1989 के लोकसभा चुनाव पर पत्रकारों ने चुनाव विश्लेषण प्रस्तुत किए। इसी समय इंडिया टुडे पत्रिका के संपादक एस. व्यंकट नारायण ने एक वैज्ञानिक सर्वेक्षण कराया। सर्वे का संचालन प्रणव राय ने किया। उन्होंने लगातार 15 दिनों तक लोगों से बातचीत कर चुनाव के तीन सप्ताह पूर्व अपना निष्कर्ष दिया, जो परिणाम आने पर सही निकला। इंडिया टुडे ने ही 1991 के चुनाव में मार्च में चुनाव सर्वेक्षण कर अपने पूर्वानुमान प्रकाशित किए मगर वे चुनाव परिणाम से बिल्कुल भी अनुरूप नहीं मिले। इसके बाद 1996, 1998, 1999, 2004, 2009, 2014 और इसी

साल 2019 में हुए लोकसभा चुनाव में भी प्रमुख मीडिया समूहों ने चुनाव पूर्व सर्वेक्षण, एग्जिट पोल किए लेकिन उनका नतीजों से कई बार सटीक या करीब करीब नतीजों जैसा ही निष्कर्ष आया तो कई बार वे ठीक उलट भी आए। जिस तरह 1989 के आम चुनाव में राज्य में तथा केंद्र में अलग-अलग सरकारें कायम हुईं, इसी तरह हाल ही में 2018 में हुए मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा राजस्थान और पूर्वात्तर राज्यों के विधानसभा चुनाव में अलग और 2019 में केंद्र में अलग दल की सरकार कायम हुई। जिस दल ने जैसा घोषणा पत्र जारी किया और वादे किए उसके प्रति जनता ने राज्य में अलग और केंद्र में अलग अलग सहमति जताई। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है।

1. बड़े स्वरूप में देखा जाये तो ज्यादातर व्यक्तियों की एक सी संस्कृति है। किसी देश का राष्ट्रीय चरित्र पूरे देशवासियों के जीवन में परिलक्षित होता है।
2. जनमत व्यक्तियों की प्रबल मनोभावना है और उनके जीवन का महत्वपूर्ण भाग है। यह मनोभावना प्रत्येक दशक में बदलती रहती है।
3. एक समय यदि कोई बात छोटी सी चिंगारी के रूप में रहती है, तो वही आगे जाकर प्रचंड अग्नि का रूप धारण कर सकती है। उदाहरण के तौर पर बोफोर्स प्रकरण राजीव गांधी के कार्यकाल में छोटा सा स्कैंडल था, लेकिन आगे चलकर जनमत ने उन्हें सत्ता से हटाकर विश्वनाथ प्रताप सिंह को सत्तासीन कर दिया। यह प्रबल जनमत का ही नतीजा था।

इसी तरह मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्री काल के दूसरे कार्यकाल में भी कई घोटालों के सामने आने के कारण कांग्रेस के खिलाफ बने प्रबल जनमत ने 2014 के चुनाव में यूपीए को सत्ता से हटाकर नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपानीत एनडीए की सरकार बना दी। हाल में 2019 के लोकसभा चुनाव में बोफोर्स की ही तरह राफेल डील का मामला उठाया गया लेकिन उस पर जनमत नहीं बन सका, इसके उलट आंतरिक सुरक्षा और राष्ट्रवाद के पक्ष में प्रबल जनमत ने 2014 से भी ज्यादा प्रभावी जीत के साथ मोदी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार को बरकरार रखा।

4. एक समान विषय, उद्देश्य या पसंद-नापसंद पर अलग अलग व्यक्तियों की सहमति ही जनमत है। उदाहरण के तौर पर नदियों पर बडे बांध बनाए जाने के विषय को ले लें तो साफ तौर पर दो अलग अलग विचारधाराएं एक साथ हैं। एक जनमत बड़े बांधों को बनाने का पक्षधर है और दूसरा जनमत जन, जंगल, जमीन बचाने और विस्थापितों की चिंता तथा बांधों के खतरे को लेकर एकमत है।

इन सर्वेक्षणों और असल नतीजों की तुलना की चर्चा हम अन्य अध्याय में विस्तार से करेंगे।

ओपिनियन

एक विचार यानी ओपिनियन साधारणतया एक

व्यवहार है जो किसी विवादास्पद विषय पर उत्पन्न होता है। इसके तथ्यों पर अगर सामाजिक स्वीकृति मिल जाये तो वो जनमत बन जाता है। मसलन भोजन का अधिकार या पानी का अधिकार एक विचार है? इन पर जब जन एक हो जाए तो जनमत का निर्माण होगा। इस तरह ओपिनियन को हम जनमत की प्रारंभिक स्थिति कह सकते हैं। ओपिनियन में सहमति का तत्व गहराने पर वह जनमत की तरफ अग्रसर हो जाता है।

अध्याय 5

भारत में चुनावी सर्वेक्षण

भारत में चुनावी जनमत सर्वेक्षण

भारत में भी शुरूआती चुनावी सर्वेक्षण का वही हश्र हुआ जो अमेरिका में पूल का हुआ था। भारत का पहला चुनावी आकलन भी नतीजे के विपरीत साबित हुआ। नई दिल्ली स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन ने 1977 के आम चुनाव से पहले सर्वेक्षण किया और भविष्यवाणी चुनाव नतीजों से खारिज हो गई। यह सर्वेक्षण जनता के मूड को जो साफ दिख रहा था, दर्ज नहीं कर पाए। इस सर्वेक्षण पर तत्कालीन सरकार का पक्ष लेने के आरोप भी लगे थे। इसके बाद भारत में चुनाव पूर्व सर्वेक्षण अगले दो चुनावों में नगण्य ही रहे। इसके बाद 1989 के चुनाव को लेकर समाचार पत्रों ने बड़े पैमाने पर चुनाव विश्लेषण प्रकाशित किए। इसी चुनाव के पहले न्यूज मैग्जीन इंडिया टुडे के संपादक एस.व्यंकट नारायण ने एक वैज्ञानिक सर्वेक्षण कराया। सर्वेक्षण का संचालन एनडीटीवी के प्रणव राय ने किया। उन्होंने लगातार 15 दिनों तक लोगों से चुनावी मुद्दों को लेकर सवाल किए। मतदान के तीन सप्ताह पहले इस सर्वेक्षण के नतीजे प्रकाशित किए गए। इसके निष्कर्ष चुनाव परिणाम आने पर सटीक निकले। लेकिन अगले ही चुनाव 1991 में इंडिया टुडे-मार्ग ने चुनाव के पहले सर्वेक्षण किया और उसके निष्कर्ष प्रकाशित किए, जब

चुनाव का वास्तविक नतीजा आया तो चुनाव पूर्व सर्वेक्षण फेल हो गया। लेकिन चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों का सिलसिला और उनसे हलचल मचने का क्रम तब से अब तक के चुनावों में रुका नहीं है।

1996 के चुनाव में बड़ी तादाद में चुनाव पूर्व सर्वेक्षण किए गए। इनमें प्रमुख रूप से टाइम्स ऑफ इंडिया, द हिंदू, राष्ट्रीय सहारा अखबार तथा इंडिया टुडे और द वीक मैग्जीन के सर्वे चर्चा में रहे। इनमें से ज्यादातर सर्वेक्षणों के नतीजे चुनाव के वास्तविक नतीजों के करीब रहे। तब यह माना गया कि चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के नतीजे या तो गलत ही साबित होते हैं या फिर वे सच के करीब साबित होते हैं। सवाल यह है कि आखिर ऐसा क्यों होता है? दरअसल मतदाताओं के मतदान व्यवहार का अध्ययन करके चुनावों के बारे में नतीजों का अनुमान लगाया जाता है। यह वैज्ञानिक तरीका है। अगर सही तकनीक का प्रयोग किया जाए तो नतीजों की भविष्यवाणी हकीकत के करीब हो सकती है। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि सर्वेक्षण संपूर्ण क्षेत्र में और सभी मतदाताओं के बीच नहीं किया जा सकता। सर्वेक्षण में खासकर चुनाव के मामले में कई बार मुद्दे और दलों की स्थिति मतदाताओं के बीच एकदम साफ होती है और वह लगभग पूरे क्षेत्र में करीब करीब एक जैसी होती है, लेकिन कई बार अलग अलग इलाकों में और अलग अलग वर्ग में अलग राय या मंशा होती है।1996, 1998, 1999, 2004, 2014 और 2019 के चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों और चुनाव नतीजों के अध्ययन से साफ होता है

कि ज्यादातर बार सर्वे नतीजे की ही तरह रहे हैं। हालांकि जब स्थिति अस्पष्ट होती है तो सर्वे भी गलत साबित हो जाते हैं।

ऐसे बदलता चला गया देश का चुनावी परिदृश्य

1960 के दशक की शुरूआत में चुनावों में राजनेताओं की राय ही महत्वपूर्ण होती थी। अखबारों रेडियो और सिनेमा की कुल मिलाकर भी पहुंच 10 फीसदी वयस्क आबादी तक ही थी। विकेंद्रीकरण और स्थानीय राज संस्थाओं के लोकतांत्रिक रूप से मजबूत होने की प्रक्रिया 1980 के दशक तक प्रभावी तरीके से आगे बढ़ी।धीरे धीरे अखबारों और नीति निर्माताओं के लिए जनमत महत्वपूर्ण होने लगा। लोक नीतियों और उन्हें बनाने वालों के लिए 1990 आते आते जनमत महत्वपूर्ण हो गया। सत्ता में आने के लिए राजनीतिक दलों ने जनमत सर्वेक्षणों में रूचि लेना शुरू कर दिया।न केवल लोकसभा और विधानसभा चुनावों में बल्कि अन्य मामलों में भी जनमत सर्वेक्षण पैमाना बनते चले गए। व्यक्तियों के विचार जनसंचार के माध्यमों के जरिए लोगों तक पहुंचने पर जनमत बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे। हालांकि जनमत व्यक्तिगत विचारों का समूह या समुच्चय बनकर नहीं उभरता लेकिन लोकतांत्रिक राजनीति में जनमत प्राणवायु की तरह है।जनमत सर्वे बेहतर फैसले लेने और उनके स्वीकार्य होने लायक बनने में मददगार होते हैं। कहा जाता है कि भले ही सर्वेक्षण पूरी तरह तटस्थ हों और सही तरीके से किए गए हों, फिर भी

सर्वेक्षण यह तो बता सकते हैं कि क्या लोकप्रिय है, लेकिन हमेशा यह नहीं बता सकते कि क्या सही है।ब्रिटेन की लेबर पार्टी के नेता रॉय हेटर्सले ने 1996 में कहा था- "जनमत सर्वेक्षण वैचारिक राजनीति के लिये जोखिम भरे हैं, क्योंकि वे राजनेताओं को यह मौका देते हैं कि वे लोकप्रियता और सिद्धांतों में से किसी एक को चुनें"।

जनमत सर्वेक्षण पूरी दुनिया में अखबारों के लिए यह जानने का तरीका रहे हैं कि जनता की जरूरतें, आकांक्षाएं, प्राथमिकताएं और नजरिया क्या हैं? न केवल उत्पादों की मार्केटिंग के लिए बल्कि लोकनीति और चुनावी राजनीति के लिए भी। भारतीय अखबारों में भी जनमत सर्वेक्षणों की पहली जरूरत चुनावी संभावनाओं को लेकर ही रही है। ज्यादा से ज्यादा संचार साधनों की उपलब्धता ने जनमत को महत्वपूर्ण फैक्टर बना दिया।1998 में लोकसभा चुनाव के वक्त तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त जीवीजी कृष्णमूर्ति ने कई चुनावी सर्वेक्षणों को मैनुपुलेटेड और मीडिया प्लांट माना था। यानी उन्हें तय करके और बकायदा मीडिया में फैलाया गया था। उन्होंने कहा था कि चुनाव आयोग इन पर रोक क्यों नहीं लगाता? बाद में कई चुनाव के सर्वेक्षणों ने कृष्णमूर्ति की बात की तस्दीक भी की। टेलीविजन और न्यूज चैनलों की लगातार वृद्धि और उनके बीच स्पर्धा मार्केट रिसर्च सेवाओं सोशल साइंस संस्थाओं की मौजूदगी और पूर्व के डाटा की उपलब्धता ने चुनावी सर्वेक्षणों की संख्या और उनमें स्पर्धा के चलते लगातार प्रगति भी होती चली गई।

देश में जब तक राजनीतिक स्थिरता का माहौल था और नेतृत्व का संकट नहीं था, तब तक जनमत सर्वेक्षणों की ज्यादा जरूरत महसूस नहीं की गई थी। पहला राष्ट्रीय स्तर का चुनावी जनमत सर्वेक्षण तब सामने आया जब 1967 में कांग्रेस का आंतरिक संकट पार्टी के दो फाड़ होने के रूप में सामने आया। देश में पहले तीन आम चुनावों 1951, 1951 और 1962 में कोई राष्ट्रीय स्तर का चुनावी सर्वेक्षण नहीं किया गया था। चुनावी जनमत सर्वेक्षण में तेजी 1991 के लोकसभा चुनाव और उसी काल में हुए विधानसभा चुनावों के दौरान आई। क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के तेजी से उभार और केंद्र में गठबंधनों ने ऐसे सर्वेक्षणों की जरूरत को ज्यादा स्पष्ट किया और 1996 आते आते यह बड़े पैमाने पर किए जाने लगे न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि राज्यों के चुनावों के स्तर पर भी। हालांकि इससे पहले 1957 में केरल राज्य में कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता में आई तो पहली दफा पश्चिम देशों की तरह भारत में भी मतदान के रूझानों और मतदान के कारकों पर शोध की बात शुरू हुई। आर्थिक पत्रकार एरिक पी.डब्ल्यु डिकोस्टा को शुरूआती सर्वेक्षणों का श्रेय दिया जाता है। वे अकादमिक थे और उनका जोर जनमत पर ही था। वे डिकोस्टा ही थे जिन्होंने चुनावी सर्वेक्षणों को पेशेवर रूप दिया। विक्रम साराभाई का भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप ओआरजी की स्थापना की। डा. एन. भास्कर राव ने चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों में सामाजिक मुद्दों को भी शामिल किया। उन्होंने लगातार चुनाव सर्वेक्षण के

तरीकों और उन्हें ज्यादा सटीक बनाने की दिशा में लगातार काम किया।

ज्यादातर चुनावी सर्वेक्षण शुरूआती तौर पर राजनीतिक दलों को लेकर मतदाताओं की पसंद के आसपास ही केंद्रित थे। यह सर्वेक्षण मुख्यत: महानगरों तक ही सीमित थे। 1970 तक आलम ये था कि इन सर्वेक्षणों के निष्कर्ष अखबारों में यदा कदा ही प्रकाशित होते थे। होता यह था कि जब तक उनके निष्कर्ष आ पाते थे तब तक चुनावी नतीजे आ चुकने के कारण उनका ज्यादा महत्व नहीं रह जाता था।

चुनाव पूर्व सर्वेक्षण तब महत्वपूर्ण बने जब अखबारों ने उन्हें खबरों की तरह प्रकाशित करना शुरू किया और सर्वेक्षणों को प्रायोजित करने लगे। हिंदुस्तान टाइम्स ने एरिक डिकोस्टा के चुनावी सर्वेक्षण को पहले दिल्ली और इसके बाद चार महानगरों में विशेष रूप से प्रकाशित किया। इसके बाद टाइम्स ऑफ इंडिया, इंडिया टुडे और इनाडु चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों को आगे बढ़ाने का काम किया। इतना ही नहीं 1991 से 1998 के अर्से में सरकारी टेलीविजन दूरदर्शन ने भी चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों और चुनावी सर्वेक्षणों पर आधारित कार्यक्रम प्रसारित करना शुरू किया। ओपिनियन पोल्स न केवल चुनावी जीत या हार के संकेतकों की तरह लिए जाने लगे बल्कि निचले स्तर तक लोगों के रुझान और मूड को समझने के माध्यम भी बने। चुनावी नतीजों की संभावनाएं जताने लगे। इंडिया टुडे ने पहली दफा जनता के मूड को समझने के लिए रुझानों के

ओपिनियन पोल समय समय पर कराए और प्रकाशित किए। लेकिन सीटों पर आधारित अनुमान 1990 के बाद तेजी से आगे बढ़े। राजनीतिक दलों ने 1989 से 1991 के बीच चुनावी सर्वेक्षणों के महत्व का अहसास किया। कांग्रेस और भाजपा दोनों ही प्रमुख दलों ने 1991 से चुनावी सर्वेक्षणों की गंभीरता को समझा और इन्हें अपनी चुनावी रणनीति बनाने के लिए मददगार मानना शुरू किया। एनडीटीवी के प्रणय रॉय ने चुनावी सर्वेक्षणों में ग्राफिक्स को बेहतरीन तरीके से शामिल कर टीवी पत्रकारिता में इन सर्वेक्षणों को खासा लोकप्रिय बना दिया।

भारत में चुनावों के ऐलान के बहुत पहले ही चुनावी सर्वेक्षण किए जाने का सिलसिला शुरू हुआ और चुनाव की तारीखों के ऐलान के बाद एक अंतराल के बीच एक से ज्यादा सर्वेक्षण सामने आने लगे। इससे मुद्दों की पहचान और जनता के बीच अंडर करंट को समझकर बेहतर पूर्वानुमान व्यक्त किए जाने की संभावनाएं भी बढ़ीं। भारत में हालांकि चुनाव पूर्व सर्वेक्षण करीब 50 साल पहले अकादमिक गतिविधियों के रूप में आरंभ हुए थे। उस वक्त सैंपल साइज 500 मतदाता होते थे। यह 1960 के दशक की बात है। लेकिन 1970 से 1980 के दशक में सैंपल साइज 10 हजार तक भी पहुंचा। बाद के सालों में यह साइज बढ़कर 60 हजार से 80 हजार तक भी पहुंचा। इसमें सर्वेक्षण प्रत्याशी चयन का मुद्दा और चुनाव के क्षेत्रों की ज्यादा संख्या शामिल करने से सर्वेक्षणों की व्यापकता बनी। आंध्रप्रदेश में 2009 के विधानसभा चुनाव में

एनडीटीवी के सर्वेक्षण में सभी विधानसभा क्षेत्रों के कुल 40 हजार मतदाताओं को शामिल किया गया। इसी चुनाव के एग्जिट पोल में तो एक लाख 60 हजार मतदाताओं की राय जानने का दावा किया गया।

बीते करीब ढाई दशक में चुनावी सर्वे करने वाली एजेंसियों की संख्या देश भर में चार दर्जन से ज्यादा हो चुकी है। शुरूआती दौर में एक सर्वे का खर्च 10 हजार रुपए से भी कम होता था जो लाखों तक पहुंच चुका है। मार्केट रिसर्च एजेंसियों के बिजनेस का बड़ा हिस्सा अब चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और एग्जिट पोल हो चुका है।एक अनुमान के मुताबिक 2008-09 में देश में चुनाव पूर्व सवेक्षणों पर 65 करोड़ रुपए से ज्यादा खर्च किए गए थे। विश्वविद्यालय एवं अन्य संस्थाओं के राजनीति विज्ञान विभाग 1960 के दशक के चुनाव संबंधी अध्ययन को लेकर ज्यादा सक्रिय थे। यह सक्रियता बाद में कम होती गई। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, आईसीसीआर और योजना आयोग की शोध कार्यक्रम समिति आरपीसी ने चौथी लोकसभा के चुनाव के नतीजों के आठ प्रमुख राज्यों के संदर्भ में अध्ययन के लिए अनुदान दिया था। इन अध्ययनों में से ज्यादातर स्थानीय मैदानी सर्वेक्षणों पर आधारित थे। इनमें से कुछ में ही मत प्रतिशत और चुनाव पूर्व सवेक्षणों के आधार पर अध्ययन किया गया था। इन अध्ययनों को अखबारों में महत्व नहीं मिला था। बाद के वर्षोंमें सीएसडीएस ने चुनावी सर्वेक्षणों को पूर्वानुमानों पर केंद्रित कर ज्यादा लोकप्रिय बनाया। 1991 में चुनावी

सर्वेक्षण जनमत के मूड को दर्शाने लगे और 1996 आते आते चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के अनुमान मीडिया में ज्यादा महत्व हासिल करने लगे। चुनावी सर्वेक्षणों के बढ़ते महत्व का असर यह हुआ कि साल 2004 के चुनावों के समय से ऐसे सर्वेक्षणों को वित्तीय मदद भी तेजी से मिलने लगी। राजनीतिक प्रक्रिया, राजनीतिक संवाद और राजनीतिक दलों की रणनीतियों में चुनावी सर्वेक्षणों को महत्वपूर्ण माना जाने लगा।

चुनावी सर्वेक्षणों में अपनाई जाने वाली रिसर्च मैथाडालॉजी के लिहाज से बात करें तो यह कई रास्तों से गुजरी। ओआरजी, मार्ग और आईआईपीओ आदि एजेंसियों ने 1991 तक चुनाव क्षेत्र और मतदाताओं को चुनने में रेंडम सैंपलिंग को अपनाए रखा। इस बीच महत्वपूर्ण चुनाव क्षेत्रों में इस पद्धति को अपनाया गया। हालांकि सीएसडीएस अपने सैंपल्स को ज्यादा पारदर्शी बनाए रखने के तरीके पर अमल करती रही। इस संस्था ने अकादमिक सहयोगियों के नेटवर्क को सर्वेक्षणों में साथ लिया।

चुनाव और मीडिया

स्वतंत्र और जीवंत मीडिया लोकतांत्रिक संसदीय व्यवस्था में एक दूसरे के पूरक हैं। लोकतंत्र में प्रेस की आजादी और पारदर्शी चुनाव प्रक्रिया दोनों का होना अत्यावश्यक है। जनमत सर्वेक्षण लोकतंत्र पर अमल में एक महत्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। जनमत सर्वेक्षण लोकतंत्र को बनाए रखने और बढ़ाने का कारगर उपाय बन चुके हैं।

चुनाव पूर्व जनमत सर्वेक्षण चुनाव प्रक्रिया का अंग बन चुके हैं और इन्हें लोकतांत्रिक प्रक्रिया का हिस्सा स्वीकार किया जा चुका है। विचार आधारित राजनीतिक दल व्यवस्था के क्षरण होने और समाचार माध्यमों के विभिन्न नए नए रूपो के तेजी से सामने आने और विस्तारित होने के चलते चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों की प्रासंगिकता लगतार बढ़ती गई है। मीडिया में इन सर्वेक्षणों की पूछ परख बढ़ने और मीडिया जगत के लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की तरह समाज में स्वीकार्य होने से मीडिया और सर्वेक्षण करने वालों को प्रक्रिया को ज्यादा बेहतर ढंग से समझने की जरूरत है।

70 के दशक में उत्सकुता बढ़ी

बीते 50 सालों में भारत में चुनावी सर्वेक्षणों को लेकर उत्सुकता और जिज्ञासा बढ़ी है।70 के दशक के पहले हिस्से में देश ने लोकसभा के दो चुनाव और आपातकाल देखा। आपातकाल हटने के तुरंत बाद हुए 1977 के आमचुनाव से पहले जनमत सर्वेक्षण में पाया गया कि जनता में कांग्रेस के खिलाफ भारी नाराजी है और इसकी प्रमुख वजहों में परिवार नियोजन पर सरकार को जोर और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबंदियां शामिल थीं। सर्वेक्षण का निष्कर्ष था कि इंदिरा गांधी सत्ता खोने वाली हैं, इसके बावजूद उन्होंने चुनाव कराए और सत्ता खो दी। तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री विद्याचरण शुक्ल ने चुनावी सर्वेक्षण के निष्कर्ष को खारिज करते हुए कहा था कि भारतीय राजनीति में ऐसे सर्वेक्षण बेमानी हैं और इस सर्वेक्षण के

आंकड़े झूठ का पुलिंदा हैं। इस सर्वेक्षण में मत विभाजन, मतदान का प्रतिशत, बदलाव फैक्टर और बढ़त का फैक्टर की अवधारणाओं का इस्तेमाल करके बताया गया था कि निष्कर्ष किस तरह निकाला गया है।

80 के दशक में चुनावी सर्वेक्षण

1980 के दशक के उत्तरार्ध में हुए चुनावी सर्वेक्षणों की खासियत थी, उस वक्त की सियासत के परिदृश्य में नई शख्सियतों का अवतरण हो रहा था। कांग्रेस में राजीव गांधी, तेलगुदेशम के नंदमूरि तारक रामाराव और आल इंडिया अन्नाद्रमुक की जयललिता जयराम नए चेहरे थे। इधर अखबारों में एन.राम द हिंदू और रामोजीराव नाडु पत्रिकाओं में, अरुण पुरी इंडिया टुडे और टेलीविजन में प्रणय राय नई दिल्ली टेलीविजन एनडीटीवी तेजी से उभरे। क्षेत्रीय दलों के उत्थान और पराभव की गाथा भी इसी दशक में लिखी गई। विधानसभा चुनावों में कांग्रेस के लिए मुश्किल हालात के दौर में ज्यादा चुनावी सर्वेक्षण हुए। फिल्म अभिनेता से नेता बने एनटीआर की सभाओं में भारी जनसैलाब उमड़ रहा था। अपने जन्म के नौ महीने बाद ही तेलगुदेशम पार्टी भारी बहुमत हासिल कर सत्ता में पहुंची। तेलगु अखबार इनाडु में प्रकाशित चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के नतीजे ने पहले ही बता दिया था कि तेलगुदेशम सत्ता हासिल करने जा रही है। 1980 से 90 के बीच तीन लोकसभा चुनाव और आंध्रप्रदेश के अलावा तमिलनाडु के विधानसभा चुनाव में तेजी से बदले राजनीतिक परिदृश्य ने

चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के विस्तार में अहम रोल निभाया। उसी दौरान एनडीटीवी के प्रणय रॉय दूरदर्शन पर चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के नतीजों के विश्लेषणों में भारतीय जनमानस को मतदान और मत प्रतिशत में स्विंग यानी वृद्धि, शिफ्ट यानी बदलाव स्पिलिट यानी विभाजन तथा टर्नआउट यानी मतदान प्रतिशत जैसे नई शब्दावली से रूबरू करा रहे थे। भारत में चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों और उनका अखबारों और टेलीविजन पर कवरेज इस दशक में नई ऊंचाईयों पर जा पहुंचा। भारतीय जनमानस और मतदाताओं ने इसे बहुत रूचि और गंभीरता से पढ़ा देखा और सुना।

1990 का दशक

यह दशक सैटेलाइट न्यूज चैनलों के तेजी से विस्तार के नाम रहा। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि क्षेत्रीय और प्रादेशिक स्तर के चैनलों का आविर्भाव हुआ। उसी तरह क्षेत्रीय दलों की महत्ता भी तेजी से बढ़ी। न केवल अपने राज्यों में बल्कि राष्ट्रीय राजनीति में भी उनका दखल और रसूख तेजी से बढ़ा। लोकसभा चुनाव में त्रिशंकु नतीजों और गठबंधनों की सरकारें बनने तथा कभी भी दोबारा चुनाव के हालात बनने के दौर में चुनावी सर्वेक्षणों का महत्व और बढ़ा दिया। इसी के चलते मीडिया में चुनावी सर्वेक्षणों को प्रायोजित करने का चलन भी बढ़ा। चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के निष्कर्षों पर चुनाव के ठीक पहले जोरदार चर्चा होने लगी। इस दशक में चुनाव पूर्व सर्वेक्षण मतदान में बदलाव और विभाजन के जरिए सीटों की संख्या यानी

किस दल या किस गठबंधन को कितनी सीटें मिल सकती हैं, यह अनुमान राष्ट्रीय स्तर पर भी और राज्यों के स्तर पर भी बताए जाने लगे। अखबारों में यह मतदाताओं का मतदान करने से पहले मानस को समझने का उपकरण भी बने। यह सर्वेक्षण और उनके विश्लेषण पूर्व के चुनावों में हुए मतदान के आंकड़ों के विश्लेषण और मतदाताओं में दलों को लेकर राय के आधार पर किए जा रहे थे। यह इसलिए भी आसान हो गया था कि चुनाव आयोग न केवल राष्ट्रीय स्तर के आमचुनाव बल्कि राज्यों की विधानसभाओं के लिए होने वाले चुनावों के तुरंत बाद उनके आंकड़े उपलब्ध कराने लगा था। इसमें राष्ट्रीय या राज्य और चुनाव क्षेत्र स्तर पर पार्टी, प्रत्याशी और उनको मिलने वाले मतों की संख्या, प्रतिशत आदि की विस्तार से जानकारी उपलब्ध होने लगी थी। चुनाव आयोग की यह आसानी से उपलब्ध रिपोर्ट्स चुनाव पूर्व सर्वेक्षण करने वाली एजेंसियों और उनके विश्लेषकों के लिए काफी मददगार साबित हुईं। उनका काम अपेक्षाकृत आसान हो गया था। यह जानकारी न केवल छपी हुई बल्कि सीडी में भी उपलब्ध हो रही थीं। एंटी इनकमवेंसी और मतों का ट्रांसफर होना जैसी शब्दावली भी इस दशक में चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के विश्लेषण में आम चुकी थी।1998 के चुनाव के दौरान चौबीस घंटे चलने वाले कई न्यूज चैनल्स ने चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों और उनके विश्लेषणों को अपने चुनावी कवरेज का अहम हिस्सा बना लिया था। ज्यादातर बड़े अखबार चुनावी सर्वेक्षणों को महत्व के साथ प्रकाशित कर रहे थे। टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान

टाइम्स जैसे अखबार और इंडिया टुडे, द वीक और फ्रंटलाइन जैसी जैसी पत्रिकाओं ने एक से ज्यादा चुनाव पूर्व सर्वेक्षण प्रकाशित किए।

वर्ष 2000 का दशक

इस दशक में चुनावी सर्वेक्षण पूरी तरह से राजनीति, चुनाव और चुनावी अभियानों का अभिन्न अंग बन गए। इतना ही नहीं वे चुनावी अभियानों का आधार भी बनते चले गए। राजनीतिक दलों की रणनीतियों और अन्य दलों से गठजोड़ के सूत्र भी इन सर्वेक्षणों से जुड़ गए। यहां तक कि अखबारों के लिए होने वाले चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों की ही तरह पार्टियां भी अपने लिए ऐसे सर्वेक्षण कराने लगीं। इस पद्धति ने चुनावी मुद्दे तय करने और प्रत्याशी चयन की पुरानी परंपरा को भी हाशिए पर धकेल दिया। राजनीतिक दल अपने स्तर पर एकाधिक सर्वे कराने के बाद उनके निष्कर्षों के आधार पर चयन को प्राथमिकता देने लगे। यह भी माना जाता है कि राजनीतिक दल अब मीडिया में होने वाले चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों से ज्यादा संख्या में सर्वेक्षण कराते हैं। इतना ही नहीं वे अपने फायदे की रणनीति के तहत ऐसे सर्वेक्षणों के चुनिंदा निष्कर्षों को मीडिया में लीक कराकर उसके असर को भी देख लेते हैं। इस दशक में 2004 के चुनावों में राजनीतिक दलों वर्तमान सांसद या विधायक के बारे में भी सर्वेक्षण कराना शुरू कर दिया। अगर उसे फिर मैदान में न उतारने जैसे निष्कर्ष आए तो नए प्रत्याशी चयन के लिए भी गोपनीय सर्वे कराए जाने

की बात दलों के सूत्रों के जरिए मीडिया में आम होने लगी। इसके पीछे राजनीतिक दलों काम इस बदलाव का अपने कॉडर यानी कार्यकर्ताओं के बीच असर का आकलन करना होता है। वे इस आधार पर अपने फैसलों और चुनावी रणनीति को बदल भी लेते हैं।

अध्याय 6
जनमत सर्वेक्षण, पूर्वानुमान और विश्वसनीयता

चुनावी सर्वेक्षण और अध्ययन के तरीके

हर तरह के अध्ययन के लिए अलग मैथाडालॉजी होती है। चुनावों से संबंधित विभिन्न तरह के अध्ययनों के लिए सर्वेक्षण और उसके विश्लेषण के लिए अलग मैथाडालॉजी की आवश्यकता होती है। चुनाव पूर्व जनमत सर्वेक्षण, चुनावी नतीजों का पूर्वानुमान बताने वाले सर्वेक्षण, मतदान के दिन एग्जिट पोल और चुनाव के बाद सर्वेक्षण के लिए अलग अलग प्रक्रिया और क्वेश्चनेयर की आवश्यकता होती है। शोध सर्वेक्षण एक अकादमिक विषय है और इसके लिए जमीनी स्तर पर काम करने के लिए प्रशिक्षित लोगों की जरूरत होती है। आज के दौर में राष्ट्रीय स्तर का जनमत सर्वेक्षण करने के लिए देश व्यापी स्तर पर कम से कम 20 हजार लोगों की राय जानना जरूरी है। यह भी शहरी और ग्रामीण आबादी के बीच करना होता है। संसाधन, तकनीकी और प्रशिक्षित टीम की उपलब्धता ने इस तरह का सर्वेक्षण 15 दिन में किया जाना संभव हो गया है। विशेष तौर से उपलब्ध फोनलाइन, ईमेल, सेलफोन, एसएमएस, सोशल साइट्स आदि की मदद से यह सर्वेक्षण ज्यादा त्वरित और बेहतर तरीके से किए जा रहे हैं। एग्जिट पोल्स के नतीजे उसी दिन प्रसारित किया जाना भी

इसी वजह से संभव हो पाया है। न्यूज चैनल और अखबार नियमित रूप से जनमत जानने के लिए जमीन आधारित सर्वेक्षणों के अलावा एसएमएस आधारित और इंटरनेट के जरिए सर्वेक्षण भी कराते हैं और विश्लेषकों की विशेषज्ञ टीम उनके निष्कर्ष तैयार करने में ज्यादा देर नहीं लगाती। बीते चुनावों के आंकड़े भी तुलनात्मक विश्लेषण के लिए पहले से उपलब्ध होते हैं। जबकि 1960 और 1970 के दशक में दो हजार लोगों के बीच सर्वेक्षण करनें में इससे कहीं ज्यादा अर्सा लग जाता था। सर्वेक्षणों के लिए कई प्रोफेशनल संस्थाएं मौजूद हैं। इनमें सीएसडीएस, नीलसन, ओआरजी मार्ग, आईएआरबी, सीएमएस, डीआरएस और सीवोटर जैसी कई ख्यातनाम संस्थाएं शामिल हैं।

चुनाव के दौरान किए जाने वाले सर्वेक्षण चुनाव पूर्व सर्वेक्षण

यह सर्वेक्षण चुनाव की तारीखें घोषित होने के करीब छह माह पहले किए जाते हैं। अमूमन तब जब चुनाव आयोग मतदाता सूचियों को अंतिम रूप देने जा रहा होता है। अखबार और राजनीतिक दल यह पता लगाना चाहते हैं कि जनता चुनाव को लेकर क्या मन बना रही होगी और अभी चुनाव हों तो क्या परिदृश्य उभरने की संभावना है। मीडिया के लिए ऐसे सर्वेक्षण वर्तमान जनप्रतिनिधि यानी सांसद या विधायक के कामकाज पर जनता की राय क्या है? वर्तमान प्रतिनिधि की आने वाले चुनाव में क्या स्थिति हो सकती है या कौन योग्य उम्मीदवार हो सकता है?

राजनीतिक दलों के लिहाज से यह चुनावी रणनीति की आधारभूत तैयारी और प्रत्याशी चयन के आधार के लिए महत्वपूर्ण वक्त होता है। मुद्दों और प्रत्याशी चयन को लेकर समुदायों के लोग क्या सोचते हैं? यह जानने में यह सर्वेक्षण अत्यंत प्रभावी कारक की भूमिका निभाते हैं। इन सर्वेक्षणों के क्षेत्र तय होते हैं।

चुनाव प्रचार के दौरान सर्वेक्षण

यह सर्वेक्षण कम ही चुनावों में सामने आए हैं। यह सर्वेक्षण चुनाव की तिथियों के बीच यानी उस दौरान किए जाते हैं जब मतदान को चंद बचे हों और चुनाव अभियान शबाब पर हो। ऐसे सर्वेक्षण मुख्यतः चुनाव प्रचार और चुनावी घोषणा पत्रों के असर को जानने के लिये किये जाते हैं।यह सर्वेक्षण राजनीतिक दलों की रणनीति में आवश्यक बदलाव और नई घोषणाएं करने के लिए मुफीद हो सकते हैं। लेकिन भारत में सुप्रीम कोर्ट चुनाव की तारीखें घोषित होने के बाद बीच में ऐसे किसी सर्वेक्षण की मनाही कर चुका है, इसलिए अब इस तरह के सर्वेक्षणों की चुनाव के दौरान महत्ता नहीं रह गई है। अलबत्ता बाद में अध्ययन के लिए इस तरह के सर्वेक्षणों के निष्कर्ष काम आते हैं। ऐसे सर्वेक्षण चुनाव पूरा होने तक सार्वजनिक नहीं किए जाते लेकिन राजनीतिक दलों के लिए ये बड़े काम के साबित हो सकते हैं। वर्तमान में एडीआर आदि संस्थाएं इस तरह के सर्वेक्षण कराती हैं।

एग्जिट पोल

यह सर्वेक्षण मतदान वाले दिन मतदाता के मतदान करने के बाद बूथ के बाहर आने के तुरंत बाद किया जाता है। यह एक सैंपल सर्वे होता है यानी किसी मतदान केंद्र या क्षेत्र के चुनिंदा संख्या में मतदाताओं से बात की जाती है। इसके विश्लेषण में चुनाव के नतीजे का पूर्वानुमान बताया जाता है कि कौन जीत रहा है। इसके लिए समय बहुत कम मिलता है। इसमें सैंपल साइज चुनाव पूर्व सर्वेक्षण की तुलना में ज्यादा बड़ा होता है, यह इसलिए जरूरी होता है कि नतीजे का निष्कर्ष ज्यादा सटीक मिल सके। इसकी मैथाडालॉजी में एक तरीका नकली मतदान पेटी और नकली यानी डमी मतपत्र के जरिए लोगों से यह जानने की कोशिश होती है कि उन्होंने किसे और क्यों वोट दिया। मतदान केंद्र से बाहर निकले मतदाताओं से आग्रह कर डमी मतदान कराया जाता है। हालांकि सभी एग्जिट पोल्स में यह तरीका नहीं अपनाया जाता क्योंकि मतदान केंद्र के आसपास 100 मीटर के दायरे में चुनाव आयोग के प्रतिबंध लागू होते हैं और इस तरह मतदाताओं का फैसला जानने के अनुकूल वातावरण भी नहीं मिल पाता। इसमें विभिन्न समूहों का चयन भी नहीं हो पाता, सिवाय महिला और पुरुष मतदाताओं और युवा एवं बुजुर्ग मतदाताओं के वर्गीकरण के। एग्जिट पोल मतदान के वास्तविक पैटर्न को ठीक से दर्ज नहीं कर पाते, हालांकि वे सही तरीके से किए गए हों तो नतीजों का पूर्वानुमान बेहतर बता पाते हैं।

चुनाव पश्चात सर्वेक्षण

यह सर्वेक्षण चुनाव नतीजे आने के बाद किए जाते हैं।यह वह वक्त होता है जब सस्पेंस खत्म हो चुका होता है, नतीजे आ चुके हैं।ऐसे सर्वेक्षणों का मकसद अकादमिक अध्ययन होता है, क्योंकि मीडिया और राजनीतिक दलों की इनमें रूचि नहीं रहती। चुनाव पश्चात सर्वेक्षण में बड़े सैंपल की जरूरत नहीं होती। भारत में सीएसडीएस ऐसी संस्था है जो इस तरह के सर्वेक्षण करती रही है। इस संस्था ने 2009 में चुनाव पूर्व सर्वेक्षण किया और एक न्यूज चैनल ने इसके निष्कर्ष प्रसारित भी किए जब अन्य एक दर्जन से ज्यादा न्यूज चैनल एग्जिट पोल के निष्कर्ष दिखा रहे थे। चुनाव पश्चात सर्वेक्षणों के विश्लेषण चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों तथा एग्जिट पोल्स की मैथाडालॉजी में भविष्य के लिहाज से संशोधन करने के लिहाज से महत्वपूर्ण होते हैं।

त्वरित सर्वेक्षण

यह सर्वेक्षण मतदान वाले दिन अलग अलग वक्त पर तत्काल किए जाते हैं और इससे वोटिंग के पैटर्न का अध्ययन तुरंत किया जाता है। इसे हम मतदान को लेकर रनिंग कमेंटरी भी कह सकते हैं। भारत में इस तरह का सर्वेक्षण पहली दफा 2007 में हुए पंजाब विधानसभा चुनाव के मतदान वाले दिन किया गया था। इसे सीएमएस मीडिया लैब ने सुबह साढ़े 11 बजे से शुरू किया था, हालांकि शिकायत मिलने पर चुनाव आयोग ने न्यूज चैनल पर इसका प्रसारण बंद करा दिया था। कहा गया था कि

इससे मतदान पर असर विपरीत असर पड़ सकता है। अब बतौर बातचीत इस सर्वेक्षण की चर्चा होती है।

रोलिंग पोल्स यानी सतत सर्वेक्षण

यह सर्वेक्षण चुनाव के दौरान कुछ दिनों के अंतराल से दोहराए जाते हैं। इनका मकसद होता है राजनीतिक दलों, सरकारों के कामकाज और प्रत्याशियों को प्राथमिकता देने को लेकर जनमत में होने वाले बदलाव का पता लगाना। इस तरह के सर्वेक्षणों में विश्लेषण का आधार दो सर्वेक्षणों के दौरान आए बदलाव को दर्ज कराना होता है। इस तरह के सर्वेक्षण चुनाव पूर्व सर्वेक्षण के निष्कर्ष ज्यादा सटीक होने में मददगार होते हैं। यह चुनाव प्रचार की रणनीति बनाने में राजनीतिक दलों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। सीएसएसडी संस्था इस तरह के सर्वेक्षण 1996 से करती रही है।

चुनावी सर्वेक्षण

सर्वे राजनीतिक दल और विज्ञापन कंपनियां दोनों इस शब्द का बहुधा प्रयोग करती हैं। न्यूज चैनल और मीडिया पोल शब्द का इस्तेमाल करते हैं। यह जनमत यानी ओपिनियन के अर्थ में होता है। अखबारी जगत में इसका मतलब ज्यादातर लोगों का मत या राय से है। यानी कौन सी पार्टी जीत सकती है या किस पार्टी को कितनी सीटें मिल सकती हैं। यानी संभावनाओं के पूर्वानुमान का आकलन चुनावी संदर्भ में सर्वे या सर्वेक्षण या पोल आमतौर पर कहा जाता है। इन पूर्वानुमानों पर लोग कितना भरोसा

करते हैं, यह संबंधित मीडिया पर निर्भर करता हैं कि वह उन्हें कितना और किस तरह से प्रकाशित या प्रसारित करता है और लोग उसे कितनी गंभीरता से लेते हैं। मसलन अप्रैल 2009 में टाइम्स ऑफ इंडिया ने अपने मैदानी संवाददाताओं से आकलन कराया और उसके आधार पर इसे प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित करते हुए इसे सर्वे बताया।इसी तरह स्टार न्यूज और एसी नील्सन ने चुनावी संभावना को सर्वे निरूपित किया। सीएमएस के कंटेंट एनालिसिस को एशियन एज ने सर्वे बताकर ही प्रकाशित किया।

चुनाव के पूर्व किए गए सर्वेक्षण असल में सैंपल सर्वे या संभावनाओं पर चर्चा के आधार पर निकले गए निष्कर्ष होते हैं। सैँपल सर्वे चुने हुए लोगों से की गई बातचीत पर ही आधारित होना चाहिए। रैंडम सर्वे अस्थाई रूप से पहले से नहीं चुने गए लोगों से की गई बातचीत के आधार पर किया जाता है। ऑनलाइन सर्वेक्षण मीडिया में आजकल प्रचलन में है, इसे न सैंपल सर्वे और न ही रैंडम सर्वे की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह एक वक्त में एक मुद्दे पर राय तो हैं, लेकिन बड़े घटनाक्रम पर व्यापक चर्चा या निष्कर्ष निकालने के लिए सर्वेक्षण नहीं माना जा सकता। यह किसी कार्यक्रम विशेष के पहले या दौरान हां या न के विकल्प पर किया जाता है, यह सहमत या असहमत, पक्ष में या विपक्ष में जैसे संक्षिप्त तरीकों पर निर्भर होता है।

अध्ययन और सर्वेक्षण में फर्क

अध्ययन एक क्षण विशेष में बताई गई राय से अलहदा जाकर विषय से संबंधित सरोकारों के अच्छे बुरे दोनों पहलुओं को समझने का तरीका है। सर्वेक्षण इसका एक हिस्सा होता है। चुनाव प्रासंगिकता के लिहाज से अस्थाई और वे एक फौरी बदलाव के बारे में होते हैं। अध्ययन में भूतकाल की प्रवृत्तियों और भविष्य में हो सकने वाले असर के संबंध का सर्वेक्षण में प्राप्त होने वाली जानकारियों का इस्तेमाल कर विश्लेषण किया जाता है। चुनावी परिदृश्य के मीडिया कवरेज में विश्लेषण का आमतौर पर इस्तेमाल किया जाता है। इसमें मौजूदा परिदृश्य के बारे में सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारियों को पूर्व के नतीजों के साथ तुलनात्मक रूप से समझने का प्रयास किया जाता है। सर्वेक्षण शोध ऐसी विधा है जिसमें पड़ताल व्यवस्थित तरीके से की जाती है। जो लोग चुनावी सर्वेक्षण करते हैं उनमें यह काबिलियत होना चाहिए। मीडिया के सर्वेक्षण लोकप्रियता को केंद्र में रखकर किए जाते हैं लेकिन अकेले इस आधार के बजाय जनता की मूल अभिरूचियों और जरूरत को लेकर किए जाने चाहिए।

बाजार सर्वेक्षण और चुनाव सर्वेक्षण

चुनाव पूर्व सर्वेक्षण बाजार का आकलन करने वाले और जनता का अभिमत जानने के लिए लगातार किए जाने वाले सर्वेक्षणों से भिन्न होते हैं। न केवल प्रक्रिया बल्कि मैथडालॉजी के स्तर पर भी चुनावी सर्वेक्षणों को ज्यादा

भरोसेमंद होने की दरकार होती है। मतगणना के दिन उनको खरा उतरना होता है। बाजार शोध और अभिमत सर्वेक्षणों में लोगों की गई बातचीत से सीटों और मतों का अनुमान नहीं लगाया जाता लेकिन चुनाव पूर्व सर्वेक्षण में जोर इसी पर रहता है। यही वजह है कि वर्षों तक चुनावी सर्वेक्षणों में मार्केट रिसर्च एजेंसियों का दबदबा रहा लेकिन जैसे ही समाज और राजनीति की बुनावट को बेहतर तरीके से समझने वाले लोगों का दखल बड़ा, मार्केट रिसर्च एजेंसियों का प्रभुत्व उतना नहीं रह गया। ऐसा माना गया कि मार्केट रिसर्च एजेंसियों के काम में उतनी पारदर्शिता और राजनीतिक गणित की समझ नहीं होती जितनी मीडिया से जुड़े लोगों में इस विषय को लेकर अमूमन होती है। एसी नील्सन, ओआरजी मार्ग और आईएमआरबी ही एजेंसी मार्केट रिसर्च एजेंसी रही हैं जिनके पास पूर्णकालिक मैदानी विवेचक और पर्यवेक्षकों की टीम है। अन्य एजेंसियां इस काम के लिए फ्रीलांसर की मदद लेती रही हैं।

दरअसल सर्वेक्षण का लक्ष्य एक समय विशेष में संदर्भ विशेष को लेकर चुनिंदा लोगों के अभिमतों या राय और प्राथमिकताओं का आकलन करना होता है। सर्वेक्षण इससे एक निष्कर्ष निकालकर एक बड़े समुदाय का प्रतिनिधि अभिमत राय या रूचि की तरह पेश करता है। फील्ड या मैदानी सर्वेक्षण एक सैंपल पर आधारित हो सकता है। यह मैदानी भ्रमण के जरिए जुटाई गई जानकारियों के रूप में हो सकता है। यह जानकारियां व्यक्तियों से अलग अलग या समूह के रूप में जुटाई गई हो

सकती हैं। चुनावी सर्वेक्षण में एक व्यक्ति जो मौजूदा चुनाव में मतदाता है, मतदान करने वाला है जानकारी जुटाने की बुनियादी या मूल इकाई होता है। एक चुनाव क्षेत्र या राज्य के चुनावी परिदृश्य के सर्वेक्षण में बीते हुए चुनावों का मतदान का रुझान भी विश्लेषण का तरीका हो सकता है। यह कुछ विशेष लोगों जैसे पार्टी नेताओं, सामुदायिक नेताओं और मतदाताओं से विचार विमर्श से भी हो सकता है। इसमें भी जिन लोगों से बात करना है, उनको पहले चयनित करके भी हो सकता है। सामान्य बातचीत या तयशुदा सवालों वाली प्रश्नावली के जरिए साक्षात्कार भी हो सकता है। लेकिन जब किसी क्षेत्र में विशेषज्ञों या मतदाताओं से चर्चा में उनकी संख्या ज्यादा हो तो फिर सैंपल चुनना जरूरी हो जाता है। इसे हम सैंपल सर्वे कहते हैं। सैंपल सर्वे में प्रश्नावली सभी के लिए समान रखना होती है। चुनावी सर्वेक्षण में जिनसे सवाल पूछे जाने हैं उनमें एक बात समान होती है कि वे सभी मतदाता हैं। यानी गैर मतदाता को इसमें शामिल नहीं किया जाता। ओपिनियन सर्वे में विषय के मुताबिक यह समानता का बिंदु अलग अलगहै।

सर्वेक्षण में पारदर्शिता सबसे महत्वपूर्ण

सर्वेक्षण के हर पहलू में पारदर्शिता सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। इसी से सर्वेक्षण की विश्वसनीयता, निष्कर्षों की प्रामाणिकता और नतीजों की वास्तविक परिणामों से निकटता स्थापित होती है। सर्वेक्षण के

प्रायोजक की जानकारी देने से सर्वेक्षण की प्रामाणिकता में इजाफा होता है। इसके निष्कर्ष प्रकाशित करते वक्त प्रायोजक का उल्लेख जरूरी है। यह बताना भी जरूरी है कि सर्वेक्षण किन लोगों के बीच किया गया है, क्या यह मतदाताओं के बीच किया गया है या फिर आम जनता के बीच। दोनों के बीच फर्क है। मतदाता भी जनता हैं लेकिन पूरी जनता मतदाता नहीं है। क्या सर्वेक्षण जिन मतदाताओं के बीच किया गया है, उसमें विविधता का ध्यान रखा गया है? लोगों से सामूहिक रूप से चर्चा की गई है या एक एक व्यक्ति से साक्षात्कार किया गया है, या फोन या इंटरनेट पर राय जानी गई है, यह भी स्पष्ट रूप से बताना अहम बात है। किसी सर्वेक्षण में सैंपल का आकार सबसे महत्वपूर्ण है। साक्षात्कार टेलीफोन पर किया गया है या व्यक्तिगत तौर पर लिया गया है, यह भी महत्वपूर्ण है।

यह भी स्पष्ट करना भी जरूरी है कि सर्वेक्षण में लिया गया मत जैसा उस दिन लोगों की राय थी, इस आधार पर दर्ज किया गया है या फिर इस आधार पर कि आज अगर मतदान हो तो वे किसे और क्यों चुनेंगे? जाहिर है दोनों स्थितियों में लोगों का मत भिन्न हो सकता है और उसी आधार पर सर्वेक्षण के निष्कर्ष भी भिन्न भिन्न हो सकते हैं। मीडिया में सर्वेक्षण के निष्कर्ष प्रकाशित होने से किसे नफा या नुकसान हो सकता है, यह भी ध्यान रखना जरूरी है। इससे फर्क नहीं पड़ता की सर्वेक्षण किसने कराया है और किसने उसे जारी किया है।

कुछ एजेंसियां सार्वजनिक स्थानों पर लोगों से बातचीत के आधार पर सर्वेक्षण करती हैं, जबकि कुछ एजेंसियां सैंपल चुनकर साक्षात्कार करती हैं। कुछ एजेंसियां विभिन्न वर्गों में अलग अलग जाकर साक्षात्कार करती हैं। ये वर्ग आर्थिक, जाति, लिंग, सम्प्रदाय के आधार पर भी तय हो सकते हैं।

आम तौर पर चुनाव को लेकर ओपिनियन पोल या जनमत सर्वेक्षण अप्रत्याशित घटनाओं से प्रभावित हो जाते हैं। मसलन किसी बड़े नेता की मृत्यु, राजनीतिक दल में विभाजन, राजनीतिक दलों के बीच गठजोड़ टूटना, नया गठजोड़ बनना, प्रत्याशी के खिलाफ बगावत हो जाना या चुनाव क्षेत्र का भूगोल बदल जाना। मसलन 1991 के लोकसभा चुनाव के कई चरण वाले मतदान में पहले चरण के बाद पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या ने न केवल सर्वेक्षणों बल्कि वास्तविक नतीजों के पूर्वानुमानों को ध्वस्त कर दिया था।

सैंपल का आकार नहीं, प्रतिनिधित्व और सवाल महत्वपूर्ण

कई सर्वेक्षण एजेंसियां 40 हजार या 50 हजार मतदाताओं का सैंपल लेकर निष्कर्ष निकालने का दावा करती हैं। लेकिन सवाल यह है कि क्या इतने बड़े आकार का सैंपल लेकर ही सही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं या छोटे साइज के सैंपल से भी सटीक अनुमान लगाना संभव है? इसका उत्तर यह है कि छोटे आकार का सैंपल लेकर

सटीक अनुमान व्यक्त कर पाना ही असल चुनौती है। भारत में सीएमएस संस्था ने तीन हजार मतदाताओं का सैंपल लेकर भी 1998 और 1999 में सटीक पूर्वानुमान व्यक्त किया था। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रश्नावली और सैंपल चुनने में प्रामाणिकता ज्यादा महत्वपूर्ण है, बनिस्वत उसके आकार के। विभिन्न एजेंसियों के सर्वेक्षणों के पूर्वानुमानों के निष्कर्ष यह भी इंगित करते हैं कि बाजार शोध संस्थाओं के सर्वेक्षण तरीके के अलावा विश्लेषण के तरीके और लगातार बदल रहे राजनीतिक परिदृश्य की जमीनी समझ भी सटीक पूर्वानुमान व्यक्त करने के लिए जरूरी है। जमीनी सर्वेक्षण और उसके विश्लेषण के बीच समय का अंतराल कम से कम होने पर विश्लेषण के पूर्वानुमान ज्यादा सटीक हो सकते हैं। सैंपल में चुने गए अलग अलग वर्गों से पूछे जाने वाले प्रश्नों और उनके विश्लेषण को बारीकी से समझना भी जरूरी है। सर्वेक्षण कर्ताओं और विश्लेषकों के बीच बेहतरीन सामंजस्य भी अत्यावश्यक तत्व है। इसमें कोई उत्तर नहीं यानी नो रिस्पांस वाले सैंपल्स की भूमिका जवाब देने वाले मतदाताओं से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि संभावित बदलाव या स्विंग इसी में छुपा होता है, इसे ठीक से समझकर विश्लेषण आवश्यक है यानी इसका प्रतिशत नतीजे को सर्वाधिक प्रभावित कर सकता है। 2009 के चुनाव में मतदाताओं की संख्या 71.14 करोड़ यानी 714 मिलियन थी और यह 2019 के चुनाव में बढ़कर 90 करोड़ यानी 900 मिलियन हो गयी। यानी चुनावी सर्वेक्षण के लिए इतना बड़ा यूनिवर्स दुनिया के किसी भी देश मे नहीं

है। इसमें से सैंपल चुनना और फिर भविष्वाणी करना आसान नहीं हो सकता। अतीत में देखें तो 40 साल पहले एरिक पी डब्ल्यु डिकोस्टा ने चुनावी सर्वेक्षण में सैंपल का आकार 2000 रखा था और यह केवल शहरी क्षेत्र तक सीमित था। सत्तर के दशक में ओआरजी ने सैंपल का आकार सात हजार रखा था। 1990 के दशक में सैंपल का आकार 10 हजार से लेकर 20 हजार तक होने लगा था।1999 से 2019तक के लोकसभा चुनावों के वक्त सैंपल का आकार 30 हजार से लेकर डेढ़ लाख मतदाताओं से भी ज्यादा तक पहूंचा। इसमें शहरी, ग्रामीण, हिंदू, मुस्लिम, जाति, व्यवसाय आदि के आधार पर अलग अलग वर्गों की राय जानी गई थी। इसमें मतदाता सूची को आधार नहीं बनाया गया था। जबकि मतदान दिन वाले सर्वेक्षण में मतदाता सूची को आधार बनाना महत्वपूर्ण तरीका होता है। हालांकि चुनावों के दौरान मतदाता सूचियों में बड़े पैमाने पर गड़बड़ियां पाई जाती रही हैं। यही वजह है कि कई एजेंसियां सर्वेक्षण में सार्वजनिक स्थानों पर लोगों से बातचीत का तरीका अपनाती हैं न कि मतदाता सूची के आधार पर सर्वेक्षण को। भारत में चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान बताते हैं कि सटीकता के लिए सैंपल का आकार बड़ा होना प्रभावी कारक नहीं है।

सैंपल सर्वेक्षण की सीमाएं

सभी चुनावी सर्वेक्षण प्रश्नावली का इस्तेमाल करते हैं। ज्यादातर प्रश्न व्यवस्थित होते हैं और पहले से तय होते

हैं। यह बड़े सैंपल आकार के सर्वेक्षण का सटीक विश्लेषण को सीमित कर सकते हैं। सर्वेक्षण एजेंसियों पर पूर्व निर्धारित लक्ष्य विश्लेषण के जरिए तय करने के आरोप भी लगते रहे हैं। राष्ट्रीय चुनाव में प्रश्नावली स्थानीय भाषा में होना चाहिए ताकि उत्तर देने वाले सवाल को ठीक से समझ सकें और समझकर सटीक उत्तर दें। पूर्वानुमान की सटीकता भी इसी पर निर्भर करती है। पता नहीं और तय नहीं किया जैसे उत्तर विश्लेषण में पूर्वानुमान के सटीक होने की महत्वपूर्ण कड़ी होते हैं। सर्वेक्षण में धर्म निरपेक्षता, गठबंधन, स्थायित्व जैसे सवालों को खास तौर पर विश्लेषित किया जाने की दरकार होती है, इन्हें कम महत्वपूर्ण मानने से पूर्वानुमान पर असर पड़ सकता है।

चुनावी सर्वेक्षण और खर्च

चुनावी सर्वेक्षण में आने वाले खर्च को लेकर हमेशा सवाल उठते रहे हैं। आखिर इन पर कितना खर्च होता होगा? सीएमएस ने 1996 के लोकसभा चुनाव के लिए गए सर्वेक्षण का खर्च छह करोड़ रुपए बताया था। आठ साल बाद 2004 के चुनाव में यह बढ़कर 20 करोड़ तक जा पहुंचाथा। एक राजनीतिक दल के चुनाव के घोषित खर्च का करीब आधा था। चुनावी सर्वेक्षण और एग्जिट पोल को प्रायोजित करने वाले चार न्यूज चैनलों को सर्वेक्षणों पर किए गए खर्च से चार गुना विज्ञापन आय इनके प्रसारण से हुई। चुनाव खर्च पर चुनाव आयोग की लगाम के बावजूद यह बढ़ता ही जा रहा है। एक अपुष्ट अनुमान के मुताबिक

2019 के चुनाव में सर्वेक्षणों पर 100 करोड़ रुपए से ज्यादा खर्च हुए हैं। चुनावी सर्वेक्षण भारतीय चुनाव प्रक्रिया का हिस्सा बन चुके हैं न केवल मीडिया के लिए, बल्कि राजनीतिक दलों और मतदाताओं के लिए भी।

सर्वेक्षण कौन करता है? सेफोलॉजी क्या है?

सेफोलॉजी असल में सामाजिक शोध है जो चुनाव के नतीजों और उनमें बदलाव के अध्ययन पर आधारित है। इसके लिए समूहों की संरचना, मैदानी राजनीतिक प्रक्रिया और दलों के बीच गठजोड़ों के महत्व को गहराई से जानना जरूरी है। इसके लिए सर्वेक्षण के तरीकों का अनुभव और लोगों से मिलने वाले अभिमत और कोई भी राय नहीं मिलने के आंकड़ों के अलावा पिछले मतदानों के रुझान की विवेचना का अनुभव बहुत ही आवश्यक है। सेफोलॉजी न तो पूरी तरह अकादिमक अध्ययन है और न ही इसे पूरी तरह से वैज्ञानिक कहा जा सकता है। यह आंकड़ों के विश्लेषण के अलावा सामाजिक मनोविज्ञान और राजनीति विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के अंतर्संबधों को समझने का अध्ययन भी है। चुनाव विश्लेषण और सेफोलॉजी में फर्क है। सेफोलॉजी चुनावी आंकड़ों का विश्लेषण भर नहीं है, जबकि चुनाव विश्लेषण में ऐसा है। सेफोलॉजी का महत्वपूर्ण आधार सैंपलिंग है। मतदान की मंशा के प्रतिशत को सीटों में व्यक्त कर पाना इसका मूल है। राजनीतिक माहौल की समझ इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है, यह माहौल लगतार बदलता रहता है।

चुनावी सर्वेक्षण की विवेचना

समाचार जगत और जनसमूह मैदानी चुनावी सर्वेक्षणों और उनके अखबारों में प्रकाशन को लेकर चौकन्ने रहते हैं। इन पर भरोसा करने से पहले वे उनके आधार को जरूर परखते हैं। आम तौर पर ये आधार छह हैं। वे यह देखते हैं कि यह सर्वेक्षण क्या चुनिंदा लोगों से बातचीत पर आधारित हैं, यानी सैंपल सर्वेक्षण हैं या वर्ग विशेष की राय पर आधारित हैं?क्या यह उपलब्ध चुनावी आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित हैं? वे यह भी देखते हैं कि इन सर्वेक्षणों को किसने प्रायोजित किया है? सैंपल सर्वे किसने और कैसे तय किया है? चुनिंदा लोगों से बात की गई है तो वह कुल मतदाताओं का आखिर कितने प्रतिशत हैं? जिन लोगों ने कोई जबाव नहीं दिया है या राय नहीं जताई है, या इंकार कर दिया है, उनका इस सैंपल सर्वेक्षण में क्या प्रतिशत है? जिन मतदाताओं ने अभी तय ही नहीं किया है, उनका प्रतिशत क्या है?

सर्वेक्षण के विश्लेषण के महत्वपूर्ण बिंदु जो विश्वसनीयता के लिए जरूरी हैं:

1. क्या सर्वेक्षण सैंपल सर्वे है? क्या यह कुछ चुनिंदा लोगों के बीच किया गया है या मैदानी सर्वेक्षण में एक फोकस ग्रुप पर केंद्रित है? क्या यह सर्वेक्षण पहले से उपलब्ध

आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित है? इन सवालों के जबाब स्पष्ट होना चाहिए।

2. सर्वे का प्रायोजक कौन है? या किसने इसे डिजाइन और संचालित किया है? उसका मकसद क्या है?

3. किसने क्षेत्र विशेष का चयन किया है? और उस क्षेत्र का कितने प्रतिशत सैंपल लिया गया है? यह प्रतिशत किसका प्रतिनिधित्व करता है?

4. अगर यह सैंपल सर्वे है तो, सैंपल का आकार क्या है? इसका प्रतिशत किस तरह किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है?

5. कोई प्रतिक्रिया नहीं, उपलब्ध नहीं या इंकार करने वालों का प्रतिशत कितना रहा?

6. सर्वेक्षण किए जाते वक्त ऐसे मतदाताओं का प्रतिशत कितना था जिन्होंने अभी तय नहीं किया है?

मार्जिन ऑफ एरर यानी कमी बेशी

सर्वेक्षणों के विश्लेषण और पूर्वानुमान में मार्जिन ऑफ एरर यानी कम या ज्यादा होने का अनुमान बहुत महत्वपूर्ण होता है। आमतौर पर सर्वेक्षण एजेंसियां पूर्वानुमानों में वोट प्रतिशत और सीट प्राप्ति की संख्या में संभावित आंकड़े का एकदम सटीक अनुमान बताने के बजाय एक रेंज दर्शाते हैं। मसलन किसी दल को 130-150 सीटें हासिल होंगी, इस तरह अनुमान व्यक्त करते हैं। यानी 130 से 150 के बीच सीटें हासिल हो सकती हैं। यह अंतराल आमतौर पर खासा बड़ा होता है। इसी तरह एग्जिट

पोल के नतीजों में भी दर्शाया जाता है।यह अंतराल सर्वेक्षण की गहनता और विश्लेषण के लिहाज से स्वीकार्य नहीं हो सकता। पूर्वानुमान में तीन से पांच फीसदी तक का अंतराल स्वीकार्य हो सकता है। यानी किसी दल को सीटें मिलने का पूर्वानुमान अगर 100-105 हो तो यह ज्यादा विश्वसनीय लगता है।ये बताता है कि सर्वेक्षण गहनता से किया है और निष्कर्ष निकालने के लिए किया गया विश्लेषण वास्तविकता के करीब है। एग्जिट पोल के पूर्वानुमान में यह चुनाव पूर्व सर्वेक्षण की तुलना में कम होना चाहिए।

सीटों का अनुमान

चुनाव नतीजों के पूर्वानुमान के लिए किए गए सर्वेक्षण में आंकड़े, राजनीतिक, सामाजिक और चुनावी आकलन की प्रक्रिया के गहन विश्लेषण से सीटों का अनुमान लगाया जा सकता है। पूर्वानुमान मुख्यतः चार बिंदुओं पर फोकस किया जाता है:

1. **मनोवैज्ञानिक**- किसी चुनाव विशेष में मतदाताओं के पूर्वाग्रहों, प्राथमिकताओं और उम्मीदवार या पार्टी विशेष के साथ सहानुभूति का विशेष असर होता है। अनुमान लगाने के लिए सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त अनुभव में इसके आधार पर किसी सीट पर किसी पार्टी या उम्मीदवार की जीत या हार का अनुमान लगाने में मदद मिलती है।

2. **सामाजिक**- मतदाता किस समुदाय से ताल्लुक रखता है, या किस समूह विशेष का सदस्य है, क्या वह समुदाय उस इलाके में बहुसंख्यक है या अल्पसंख्यक है? यह अनुमान

लगाया जाता है कि कोई मतदाता मतदान करने में अपने समुदाय या समूह के पैटर्न पर ही मतदान करता है।

3. **आर्थिक**- मतदाता यह भी तौलते हैं कि किस प्रत्याशी या दल को वोट देने से उन्हें लाभ या हानि हो सकती है।वे इस आधार पर विचार करके भी मतदान करते हैं। इसमें वे ये देखते हैं कि उनके लिए बेहतर रोजगार के अवसर या उन्नति की राह किस उम्मीदवार या पार्टी को चुनने में मिल सकते हैं।

4. **राजनीतिक**- अगर कोई राजनीतिक कार्यकर्ता के तौर पर सक्रिय है तो राजनीतिक या राष्ट्रीय या आर्थिक मुद्दे पर पूर्व में उसकी मतदान की प्राथमिकता क्या रही हैं? वह धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रवाद, रोजगार के हालात आदि मुद्दों पर पार्टियों के नजरिए पर कैसे मतदान करता है?

5. **समान वर्ग और भौगौलिक स्थिति**- माना जाता है कि एक ही वर्ग के मतदाता एक जैसे पैटर्न पर वोट कर सकते हैं मसलन उम्र, लिंग, आय, रोजगार आदि की समानता से मतदान का पैटर्न समझा जा सकता है। इसी तरह उपरोक्त आयामों में मतदाता व्यक्तिगत तौर पर भिन्न भिन्न या समूह या वर्ग के तौर एक ही तरह का चुनाव कर सकते हैं। उम्मीदवारों की संख्या और उनके बीच मतदाताओं के रुझान के विभाजन भी कारक तत्व होते हैं। इन सभी बिंदुओं पर फील्ड सर्वेक्षण के दौरान बारीकी से गौर करने और उन्हें दर्ज करने की आवश्यकता होती है।

इन सभी आयामों का असर हर चुनाव में भिन्न भिन्न हो सकता है और एक क्षेत्र में अलग और दूसरे में

अलग हो सकता है या एक राज्य में दूसरे राज्य से भिन्न हो सकता है। सर्वेक्षण में सीधी बातचीत और फोकस ग्रुप में चर्चा से आधार और औचित्य को समझा जा सकता है। इसमें स्थानीय विशेषज्ञों और ओपिनियन लीडर्स से बातचीत कर मतदाताओं के मतदान के संभावित व्यवहार को समझा जा सकता है। सीटों का अनुमान लगाने की प्रक्रिया में यह भी महत्वपूर्ण है कि मैदानी सर्वेक्षण मतदान की तारीख के कितने करीब समय में किया गया है। अनुमान लगाने में कौन-कौन प्रत्याशी थे, घोषणा पत्रों में क्या वादे किए गए? और चुनाव प्रचार कितना असरदार रहा? अंतिम समय में प्रलोभन और दबाव किस तरह काम कर रहे थे? इन सभी बिंदुओं का भी ध्यान रखना सीटों के अनुमान जताने के लिए आवश्यक हैं।

पूर्वानुमान के कारक ये भी

- मतदान करने की वजह, पार्टी या प्रत्याशी का चयन
- पिछले चुनाव का मतदान और वर्तमान चुनाव में मतदान की वजह और अगर बदलाव है तो उसकी वजह
- पसंद और इसमें मतदान के अंतिम क्षण में बदलाव की संभावना
- दलों के चुनाव अभियान कितने बेहतर रहे
- पार्टी छोड़ने और शामिल होने के असर
- कौन जीत सकता है, किसके जीतने की ज्यादा संभावना है, इसके अनुमान का असर

- प्रत्याशी की स्थानीयता
- पिछले चुनावों का परफार्मेंस और उसमें बदलाव की संभावनाएं
- बदलाव के मुद्दे और मतदाताओं पर उसका असर। जैसे 2019 के लोकसभा चुनाव में कश्मीर में अर्ध सैनिक बलों पर आतंकी हमला और उसके जबाव में एयर स्ट्राइक का मौजूदा सत्ता के पक्ष में माहौल बना।
- ऐसे मतदाता जिन्होंने अभी तय नहीं किया है या जो अनिर्णय की स्थिति में हैं।

सर्वेक्षणों की भूमिका, क्या ये चुनाव पर असर डालते हैं?

जनमत सर्वेक्षणों का चुनाव के संदर्भ में कितना असर होता है? यह असर किस तरह का होता है? यह वे सवाल हैं जिन पर चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों की महत्ता, उपयोगिता और फलितार्थ की प्रासंगिकता टिकी है। भारत के संदर्भ में चुनावों की अत्याधिक जटिल विविधताओं के चलते यह कहना बहुत ही मुश्किल है कि अकेले चुनाव पूर्व सर्वेक्षण चुनावों पर सीधा असर डालते हैं या डाल सकते हैं, क्योंकि चुनाव में आखिरी वक्त में कोई ऐसा फैक्टर नतीजों को तेजी से और सीधा प्रभावित कर सकता है, जिसका पहले से अनुमान लगाना शायद संभव नहीं होता। किसी भी चुनाव के मामले में कोई एक कारक चुनाव के नतीजे को नहीं बदल सकता। खासकर लोकसभा या विधानसभा के

चुनाव में। चुनाव का नतीजा कई कारकों को मिला-जुला असर होता है। यह भी हर चुनाव क्षेत्र में एक सरीखा नहीं होता। चुनावी सर्वेक्षणों का चुनाव नतीजे पर असर कितना होगा या हो सकता है, यह उसके वक्त पर निर्भर करता है कि वह चुनाव प्रक्रिया के किस चरण के वक्त किया गया है, और उसे किस वक्त में जारी किया गया है। हालांकि यह भी महत्वपूर्ण है कि कोई चुनाव पूर्व सर्वेक्षण अगर नतीजे में गलत साबित होता है तो यह नहीं माना जा सकता है कि वह उस वक्त में भी गलत ही था जब उसे किया गया था।यानी वक्त के साथ लोगों के नजरिए और फैसले में बदलाव अन्य तात्कालिक वजह से आ सकता है।

चुनाव सर्वेक्षण अगर मीडिया में प्रमुखता से प्रकाशित और प्रसारित किए गए हैं, तो उनका चुनाव में मतदान के तरीके पर स्वाभाविक तौर पर असर पड़ता है। अगर यह सर्वेक्षण चुनाव में प्रत्याशी की घोषणा और उसके चुनाव प्रचार के कुछ दिन बीत जाने के बाद किया गया है तो उसके निष्कर्ष नतीजे के करीब आने की संभावना ज्यादा होती है। चुनावी सर्वेक्षणों का सीधा असर चुनाव प्रचार अभियानों और मतदान करने में मतदाताओं के मानस बनने पर पड़ता है। बीते चार दशक में चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों की तादाद चार गुना से ज्यादा बढ़ गई है। विभिन्न संस्थाओं और एजेंसियों के अलावा राजनीतिक दल और उम्मीदवार भी सर्वेक्षण कराते हैं। इनका उपयोग उम्मीदवार चयन और चुनाव अभियानों की रणनीति बनाने में किया जाता है। ज्यादातर बड़े अखबार और न्यूज चैनल

चुनाव पूर्व सर्वेक्षण कराते हैं। इसमें भी राष्ट्रीय स्तर पर अखबार और न्यूज चैनल स्थानीय स्तर के अखबार और चैनल से मिलकर ऐसे सर्वेक्षण करते और प्रकाशित प्रसारित करते हैं, ताकि वे चुनाव के दौरान प्रभावशाली बनकर न केवल मतदाताओं बल्कि राजनीतिक दलों के चुनाव अभियानों का भी हिस्सा बन सकें।

यह कोई छुपा हुआ तथ्य नहीं है कि अखबारों और न्यूज चैनल्स के लिए चुनाव अपना प्रसार बढ़ाने और आय बढ़ाने का अवसर होते हैं। राजनीतिक दल चुनावी सर्वेक्षणों को जाहिर तौर पर तो नहीं लेकिन अपरोक्ष रूप से प्रोत्साहित और प्रायोजित करते हैं। हालांकि उनके पूर्वानुमान अगर दल विशेष के पक्ष में आते हैं तो वह दल उनका स्वागत करता है और जिस दल के पक्ष में नहीं आते तो वह उनको खारिज कर देता है। दोनों ही स्थितियों में राजनीतिक दल इन पूर्वानुमानों को अपनी चुनावी रणनीति तय करने या बदलने में उपयोग करते हैं। दल अपने कार्यकर्ताओं को उत्साहित करने और कमर कसने के लिए तैयार करने में भी सर्वेक्षणों का उपयोग करते हैं। चुनावी सर्वेक्षणों के पूर्वानुमानों के मीडिया में प्रकाशन चुनाव पर प्रभाव जरूर डालते हैं लेकिन यह कहना मुश्किल है कि असर कितना और किस तरह का होता है, यह क्षेत्र और वर्ग विशेष में अलग अलग हो सकता है।

हर चुनाव के वक्त यह सवाल उठता रहा है कि क्या चुनाव पूर्व सर्वेक्षण चुनाव के नतीजों पर सीधा असर डालते हैं? इस सवाल के जबाव की पड़ताल में महत्वपूर्ण बिंदु यह

है कि विधानसभा हो या लोकसभा चुनाव अब एक से ज्यादा चरण में होते हैं और उनके बीच कुछ या कई दिनों का अंतराल होता है। विधानसभा चुनाव दो, तीन या चरण में होते हैं जबकि लोकसभा चुनाव चार, पांच, छह और सात चरण तक में होने लगे हैं। दो चरणों या पहले और आखिरी चरण के बीच अंतराल के बीच चुनाव सर्वेक्षण के पूर्वानुमान एक जैसे होना मुमकिन नहीं है। यह सही है कि ज्यादातर सर्वेक्षण स्वतंत्र और निष्पक्ष बताए जाते हैं लेकिन उनके नतीजों को लेकर दलों की राय अपने पक्ष या विपक्ष में होने पर बदल जाती है। चुनाव के चरणों के बीच सर्वेक्षणों के नतीजे प्रकाशित और प्रसारित करने पर चुनाव आयोग ने बाद के सालों में इसी वजह से रोक लगा दी ताकि वे मतदाताओं को प्रभावित न कर सकें।एग्जिट पोल के मामले में भी प्रसारण मतदान के अंतिम चरण के बाद ही किए जाने का नियम बना दिया गया।

अनिर्णय में ही छुपा होता है निर्णायक मत

चुनावी सर्वेक्षणों के दौरान मतदाताओं का वह प्रतिशत जो अनिर्णय में है या जिसने अभी निर्णय नहीं किया है, वह चुनाव के प्रचार अभियानों और अन्य तात्कालिक कारकों से अपने अनिर्णय को निर्णय में बदलता है और नतीजों को सीधा प्रभावित करता है, वह मतदान के वक्त कैसा निर्णय लेता है, उस पर किसी दल या उम्मीदवार की हार या जीत निर्भर करती है। चुनावी सर्वेक्षणों के पूर्वानुमानों का मीडिया में प्रकाशन प्रसारण इस श्रेणी के

मतदाता को वोट डालने के वक्त निर्णय लेने में प्रभावित करने वाला कारक बन सकता है। मतदाताओं का यह प्रतिशत दो प्रतिशत से कम या ज्यादा हो सकता है। खासकर उन क्षेत्रों में जहां मुकाबला ज्यादा कड़ा होता है। इन क्षेत्रों में जीत या हार अत्यंत कम अंतर वाली हो सकती है।

ओपिनियन पोल की भविष्यवाणियां : सवाल विश्वसनीयता का है

भारत में जनमत सर्वेक्षण यानी ओपिनियन पोल शब्द सुनते ही चुनावी सर्वेक्षण और एग्जिट पोल के साथ ही उनके सीटों की संख्या के साथ हार जीत की भविष्यवाणियां मन में कौंध जाती हैं। जब जब चुनाव आते हैं तब तब अखबारों और न्यूज चैनल्स पर चुनावी सर्वेक्षण और उनमें राजनीतिक दलों की घटत और बढ़त के आंकलन प्रकाशित और प्रसारित होने लगते हैं। चुनावी सर्वेक्षणों को चुनावी प्रक्रिया में जनता की राय को सामने लाने का तरीका माना जाता है लेकिन ऐसा भी माना जाता है कि वे राजनीतिक दलों के नफे या नुकसान के लिए भी लक्षित किए जाते हैं, वे चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। भारत में बीते करीब चार दशक में चुनावी सर्वेक्षणों को लेकर आम जनता और मतदाताओं में जितनी उत्सुकता और रूचि रही है, दूसरी तरफ उनकी निष्पक्षता पर भी सवाल उठते रहे हैं। कई चुनावों में चुनावी सर्वेक्षणों और एग्जिट पोल के नतीजे वास्तविक नतीजों के ठीक उलट

रहने से भी विश्वसनीयता पर सवालिया निशान लगे हैं। बीते दो लोकसभा चुनाव में इस धारणा को पुष्टि मिली है कि जनमत सर्वेक्षण यानी ओपिनियन पोल जनता की राय की अभिव्यक्ति भी एक हद तक दर्शाते हैं और यह भी कि वे एक हद तक चुनाव में जनता की राय बनाने में प्रभावी भूमिका निभाते है। अब तक के चुनावों में चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान कभी सही तो कभी गलत और कभी आंशिक सही साबित हुए हैं। चुनावी सर्वेक्षण की सटीकता की बात करें तो कुछ महत्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हो सकते हैं। पहला तो ये कि सर्वेक्षण का सैंपल इतना बड़ा तो अवश्य ही होना चाहिए कि उससे चाहा गया निष्कर्ष सटीक आ सके। इसके लिए किसी चुनाव क्षेत्र के कुल मतदाता संख्या का एक तय प्रतिशत सैंपल चुनने के अलावा उस सैंपल में भी क्षेत्र के सभी महत्वपूर्ण वर्गों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। मतदाताओं का सैंपल इस तरह चुनना चाहिए कि हर वर्ग को बराकर राय का अवसर मिल सकें। अर्थात जिन लोगों से राय ली जा रही है उनकी राय में उनकी बात भी शामिल मानी जा सके जिनकी राय नहीं ली जा रही है। सर्वेक्षण में प्रश्नावली इस तरह होनी चाहिए कि सभी को राय व्यक्त करने का एक समान अवसर मिलें। प्रश्न सभी वर्गों को स्पष्ट रूप से समझ में आने चाहिए और इस तरह समझ में आने चाहिए कि वे उनका अपनी राय जताने में स्पष्ट रूप से उत्तर दे सकें।

भारत के बीते लोकसभा चुनावों का इतिहास देखें तो चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के पूर्वानुमानों की सफलता और

असफलता का हिस्सा करीब करीब बराबर रहा है। मसलन 1998 और 1999 के लोकसभा चुनाव के पूर्वानुमान ज्यादातर सर्वेक्षणों के सच के करीब रहे थे लेकिन 2004 और 2009 के चुनाव में इसके विपरीत हुआ यानी ज्यादातर सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान उलट साबित हुए। लेकिन 2014 और 2019 के चुनाव में एक बार फिर ज्यादातर चुनावी सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान चुनाव के वास्तविक नतीजों के करीब रहे। बल्कि 2019 में तो वास्तविक नतीजे का पूर्वानुमान से कहीं ज्यादा उसी दिशा में आगे रहेँ। जहां एक तरफ 2004 में ज्यादातर पूर्वानुमान भाजपानीत एनडीए के सत्ता में बने रहने का निष्कर्ष बता रहे थे लेकिन ऐसा नहीं हुआ, एनडीए सत्ता से बाहर हुआ और यूपीए को सत्ता हासिल हुईं। इसी तरह 2009 के चुनाव में भी यूपीए के सत्ता में बरकरार नहीं रहने के आसार लगभग सभी सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान बता रहे थे, सिर्फ कांग्रेस का अपना सर्वेक्षण यूपीए को 200 सीटें मिलने और सरकार बनी रहने के पूर्वानुमान बता रहा था। हुआ भी यही, ज्यादातर सर्वेक्षणों के अनुमान पूरी तरह गलत साबित हुए और यूपीए सत्ता मेंबरकरार रहा। 2014 में एनडीए की भाजपा के नेतृत्व में सरकार बनने के अनुमान सही साबित हुए लेकिन भाजपा की भारी जीत और कांग्रेस की तब तक की सर्वाधिक बुरी स्थिति का पूर्वानुमान किसी भी सर्वेक्षण के नतीजे में सामने नहीं आया था। यहां तक की भाजपा और एनडीए के अपने अनुमानों में भी कांग्रेस की बुरी तरह से पराजय का अनुमान नहीं लगाया गया था। इसी तरह 2019

के लोकसभा चुनाव में भाजपा नीत एनडीए के सत्ता में बरकरार रहने का पूर्वानुमान लगभग सभी सर्वेक्षणों ने जताया लेकिन वास्तविक नतीजे में जिस संख्या में भाजपा और एनडीए के प्रत्याशी जीते उसका पूर्वानुमान कम ही सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान में व्यक्त किया गया था। जिन सर्वेक्षणों ने ऐसे नतीजे आने के आसार बताए थे उन्हें अतिरंजित और प्रायोजित माना जा रहा था। कांग्रेस और यूपीए इन पूर्वानुमानों को नकार रहे थे और दूसरी तरफ भाजपा के आतंरिक सर्वेक्षण और उसके नेताओं के सार्वजनिक बयान उसी तरह के दावे कर रहे थे, जैसे नतीजे आए। सवाल यह है कि पूर्वानुमान गलत साबित होने की वजह क्या रही होगी? क्या सैंपल का आकार इतना छोटा था कि सटीक अनुमान नहीं लगाया जा सका? या सैंपल चुनने में मतदाताओं के सभी प्रकार के वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व ही नहीं किया गया था या कि प्रश्नावली में ही कोई कमी थी? या जो सर्वेक्षण अपने पूर्वानुमान में गलत साबित हुए, वे किसी दल या लॉबी विशेष के लक्ष्य को ध्यान में रखकर किए गए थे? यानी निष्कर्ष पहले तय थे और सर्वेक्षण उसी के मुताबिक किए गए या किए गए स्थापित कर दिए गए थे? इसी संदिग्धता के चलते राजनीतिक दल अपने खिलाफ आने वाले पूर्वानुमानों को खारिज करते रहे हैं। हालांकि वे अपने पक्ष में लगने वाले पूर्वानुमानों का स्वागत करते हैं।

अध्याय 7

भारत में चुनाव सर्वेक्षण भविष्यवाणियां और हकीकत

सैंपल का सही चुनाव है सफलता की कुंजी

भारत में पूर्वानुमान गलत साबित होने का सबसे प्रमुख कारण सैंपल का उचित रूप से नहीं चुना जाना है। भारत की 70 फीसदी आबादी ग्रामीण क्षेत्र में रहती है। इसका मतलब है कि सौ में से 70 फीसदी मतदाता ग्रामीण क्षेत्र के होते हैं और 30 फीसदी शहरी और अर्द्ध शहरी क्षेत्रों के। आदर्श रूप में सैंपल ऐसा होना चाहिए कि 70 फीसदी मतदाताओं से बातचीत ग्रामीण क्षेत्र में और 30 फीसदी शहरी क्षेत्र के मतदाताओं से होना चाहिए। लेकिन ज्यादातर मार्केट रिसर्च एजेंसियां जो चुनावी सर्वेक्षण करती हैं, वे ऐसा नहीं करतीं। ज्यादातर सर्वेक्षण शहर केंद्रित होते हैं। यही वजह है कि सैंपल चयन बुनियादी तौर पर गलत होता है। इसके अलावा सर्वेक्षण में लगाई गई टीम का व्यवस्थित प्रशिक्षण भी नहीं होता। जबकि भारत में चुनावी सर्वेक्षण मैदानी होते हैं। इसमें मेहनत लगती है और लोगों के बीच जीवंत संपर्क कर उनकी चुनाव को लेकर राय जानी जा सकती है। ज्यादातर मार्केट रिसर्च एजेंसियां फील्ड वर्क और ट्रैनिंग पर ज्यादा धन खर्च नहीं करतीं। यह चुनावी सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान गलत साबित होने की बड़ी वजह

बनता है। अमेरिका और योरोपीय देशों में ज्यादातर चुनावी सर्वेक्षण टेलीफोन पर किए जाते हैं।

पूर्वानुमान गलत कैसे साबित हो जाते हैं?

1. भारतीय मतदाता की सामाजिक सांस्कृतिक विविधता एक बड़ा फैक्टर है। इसमें जातीय, भाषाई और सांस्कृतिक विभिन्नता मतदान के पैटर्न को प्रभावित करने वाले कारक होते हैं। ऐसे में सवाल यह है कि क्या चुनाव कार्यक्रम घोषित होने के बाद मतदाता अपना वोट देने के बारे में निर्णय कर लेते हैं? या ऐसे मतदाताओं की संख्या अच्छी खासी तादाद में होती है जो ऐन वक्त पर निर्णय लेते हैं। क्या मतदाता अपने मतदान के निर्णय के बारे में सर्वेक्षणकर्ताओं को बताते हैं या वे इसे गोपनीय ही बनाए रखते हैं?
2. क्या सर्वेक्षण चुनाव के बहुकोणीय होने को ठीक से दर्ज कर पाते हैं? राजनीतिक दलों के बीच गठजोड़ और उनके पारंपरिक मतदाताओं के वोट का एक दूसरे को अंतरण हो पाता है? पार्टियों के बीच गुटबाजी, बगावत और भितरघात को क्या सर्वेक्षणकर्ता ठीक से विश्लेषित कर पाते हैं?
3. क्या सैंपल चयन सही हो पाता है? क्या सैंपल का आकार सर्वेक्षण के सटीक होने की गारंटी हो पाता है?

4. चुनाव विश्लेषकों का सीटों का अनुमान लगाने का तरीका क्या सर्वेक्षण के सटीक होने के अनुरूप होता है?

सीटों का अनुमान सटीक कब नहीं हो पाता?

चुनाव पूर्व सर्वेक्षण सीटों की संख्या का पूर्वानुमान ठीक से व्यक्त नहीं कर पाते क्योंकि एक चौथाई मतदाता पहले से यह तय नहीं करते कि वे किसे वोट देंगे। यह मतदाता ही चुनाव में सर्वाधिक निर्णायक भूमिका निभाते हैं। इसलिए चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और चुनाव के दौरान किए गए सर्वेक्षणों के अनुमान एक सरीखे नहीं हो सकते। मतदाताओं का यह वर्ग चुनाव प्रचार अभियान के दौरान मतदान को लेकर अपना मानस बनाना शुरू करता है। इनकी राय बनने से पहले किया गया पूर्वानुमान गलत होने की प्रचुर संभावना होती है। जनमत चुनाव की तारीखें घोषित होने के बाद के हफ्तों में मतदान के वक्त तक कई बार बदलता रहता है। उदाहरण के लिए 2007 के उप्र विधानसभा चुनाव के वक्त चुनाव पूर्व सर्वेक्षण में सवर्ण कहे जाने वाले मतदाता वर्ग के एक बड़े हिस्से ने यह नहीं बताया कि वे इस बार किसे वोट देगा। जातीय बुनावट के आधार पर पारंपरिक मतदाताओं का आकलन करने से पूर्वानुमान गलत साबित हुएक्योंकि आम तौर पर दलित वोट बैंक की पार्टी माने जाने वाली बहुजन समाज पार्टी को उस चुनाव में सवर्ण वोट बैंक जिसे आमतौर पर भाजपा या कांग्रेस के साथ जाने वाला वर्ग माना जाता है, के एक

हिस्से ने भी वोट दिया। बसपा की मायावती के नेतृत्व में भारी बहुमत से सरकार बन गई। पूर्वानुमान के नतीजे गलत साबित हुए। इसी तरह 2008 में कर्नाटक विधानसभा चुनाव में कांग्रेस से एक फीसदी कम वोट पाने वाली भाजपा ने कांग्रेस से ज्यादा सीटें हासिल कीं। कांग्रेस को ज्यादा वोट मिलने के बावजूद अलग- अलग सीटों पर अन्य उम्मीदवारों की उपस्थिति के कारण भाजपा को इसका लाभ मिला। इसी तरह 2017 के उप्र विधानसभा चुनाव में कांग्रेस और समाजवादी पार्टी ने मिलकर चुनाव लड़ा और बसपा भी चुनाव मैदान में थी, इसका फायदा भाजपा को तूफानी जीत के रूप में मिला। लेकिन इसी साल गोरखपुर और फूलपुर लोकसभा सीटों के लिए हुए उप चुनाव में बसपा और सपा ने गठबंधन कर चुनाव लड़ा और भाजपा को यह दोनों सीटें गंवाना पड़ीं। लेकिन 2019 में लोकसभा चुनाव में बसपा-रालोद का महागठबंधन कांग्रेस के अलग रहने से एक बार फिर भाजपा को भारी बहुमत हासिल हुआ।

दुनिया और भारत के चुनाव सर्वेक्षणों का बुनियादी फर्क

चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों और एग्जिट पोल्स के बारे में यह कहा जा सकता है कि विदेश में होने वाले ओपिनियन पोल्स के उलट भारत के मीडिया में चुनावी सर्वेक्षणों का जोर मतदाताओं के सामने क्या मुद्दे क्या चुनौतियां हैं, इसके बजाय इस पर रहता है कि प्रमुख दलों को कितनी

सीटें मिलने जा रही हैं, इसकी भविष्यवाणी की जाए। यह बात भी स्टिंग ऑपरेशन के जरिए सामने आ चुकी है कि कुछ सर्वेक्षण एजेंसियां सीटों की संख्या का पूर्वानुमान बताने में अपने ग्राहक दलों के पक्ष में बदलते हैं यही वजह है कि चुनावी सर्वेक्षणों के पूर्वानुमानों को कई बार मीडिया गिमिक यानी मीडिया के जरिए अपने पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास भी कहा जाता हैं, हालांकि ऐसा कहना भी गलत साबित हो जाता है जब चुनावी सर्वेक्षणों के नतीजे वास्तविक नतीजों की सटीक भविष्यवाणी साबित हो जाते हैं।

सावधानियां जरूरी

मीडिया को सर्वेक्षणों के निष्कर्ष प्रकाशित प्रसारित करने में सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि ऐसे सर्वेक्षण राजनीतिक दल विशेष से प्रेरित या प्रायोजित हो सकते हैं। सीएमएस ने 1998 में सर्वेक्षण निष्कर्ष जारी करने में एक विज्ञापन के जरिए स्पष्ट किया कि पाठक सर्वे के नतीजों से प्रभावित न हों।

क्या चुनावी सर्वेक्षण मतदाता को ताकतवर बनाते हैं?

सुप्रीम कोर्ट यह महसूस कर चुका है, अखबारों में खास तौर पर छपने वाले चुनावी सर्वेक्षण पारदर्शी और निष्पक्ष चुनाव को प्रभावित कर सकते हैं। सन 2004 में पूर्व एटार्नी जनरल सोली सोराबजी ने सरकार को यह सलाह दी कि अगर चुनाव पूर्व सर्वेक्षण या एग्जिट पोल पर

रोक लगाई जाएगी तो यह संविधान में दी गई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता यानी अनुच्छेद 19(1)-क का उल्लंघन होगा। हालांकि इसके पहले सोराबजी ने सुप्रीम कोर्ट में यह भी कहा कि टीवी पर पार्टियों को विज्ञापन की इजाजत देना चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करने की इजाजत देने जैसा है। सन 2004 में ही चुनाव आयोग में हुई सभी राजनीतिक दलों की बैठक में आयोग इस सहमति पर पहुंचा कि किसी चुनाव में सभी चरणों का मतदान पूरा होने के बाद ही एग्जिट पोल के नतीजे प्रकाशित और प्रसारित करने की अनुमति दी जाना चाहिए। हालांकि इसमें चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों को लेकर स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा गया। एक नजरिया यह था कि चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के निष्कर्ष चुनाव की अधिसूचना जारी होने के बाद प्रकाशित नहीं किए जाने चाहिए। हालांकि इसमें यह स्पष्ट नहीं था कि अधिसूचना चुनाव की घोषणा वाली या चुनाव के विस्तृत कार्यक्रम वाली से आशय था। दूसरा नजरिया था कि चुनाव पूर्व सर्वे चुनाव प्रचार समाप्त होने के बाद यानी मतदान से 48 घंटे से पहले प्रकाशित प्रसारित नहीं होने चाहिए।

मीडिया को क्या करना चाहिए?

चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और एग्जिट पोल्स के नतीजे चुनाव प्रक्रिया का हिस्सा बन चुके हैं, ऐसे में मीडिया उन्हें नकार नहीं सकता लेकिन उन्हें प्रकाशित करने में सावधानी जरूर बरत सकता है। समाचार पत्रो को इन्हें इस तरह प्रकाशित करना चाहिए जिससे चुनाव प्रचार अभियान की

गुणवत्ता में सुधार हो सके, मतदान का प्रतिशत बढ़ सके और मतदाता यह समझ सकें कि चुनाव लड़ रही पार्टियों और उम्मीदवारों की मंशा क्या है? मीडिया को यह भी अपने दर्शकों, पाठकों और मतदाताओं को बताना चाहिए कि वे क्यों इन्हें प्रकाशित कर रहे हैं या प्रायोजित कर रहे हैं। चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और एग्जिट पोल में से एग्जिट पोल को ज्यादा विश्वसनीय होना चाहिए वह इसलिए क्योंकि मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग कर चुके होते हैं, इसके बाद नतीजे में बदलाव का कोई कारण बाकी नहीं रह जाता, सिवाय इसके कि एग्जिट पोल सही तरीके से नहीं किया गया था। चुनाव पूर्व सर्वेक्षण अगर नतीजे आने पर सही साबित होता है तो यह उस दिन की खबर है और अगर सही साबित नहीं हुआ तो भी खबर है। इसमें यह बताना जरूरी है कि वास्तविक नतीजे किस तरह सर्वेक्षण के पूर्वानुमानों के करीब आए हैं और अगर नहीं आए हैं तो वे कौन से कारक रहे जिनकी वजह से नतीजे अनुकूल नहीं रहे। सर्वेक्षण के वक्त और मतदान के बीच के समय में वे कौन से बदलाव हुए जिनके चलते मतदाता ने अपना मानस बदला।

चुनावी सर्वेक्षणों का उपयोग और दुरुपयोग

चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों का राजनीतिक दलों के लिए उपयोग या दुरुपयोग किए जाने के उदाहरण कम नहीं हैं। सन 2008 के दिल्ली विधानसभा चुनाव के पहले एक न्यूज चैनल ने चुनाव पूर्व सर्वेक्षण को लेकर प्रसारित अपने

कार्यक्रम में कांग्रेस को काफी आगे बताया। इतना ही नहीं मतदान के तीन दिन पहले दूसरे सर्वेक्षण कांग्रेस और आगे बढ़ते हुए दिखाया गया। दोनों ही सर्वेक्षण एक ही एजेंसी ने किए थे। अखबारों ने पहले सर्वेक्षण की खबर को प्रमुखता से प्रकाशित की लेकिन दूसरे सर्वेक्षण की खबर को महत्व नहीं दिया। साफ था कि अखबार न्यूज चैनल का मंतव्य समझ चुके थे। राजनीतिक दलों ने चुनावी सर्वेक्षणों को अपने प्रचार अभियान की सफलता का हिस्सा बनाना शुरू कर दिया और कई राज्यों के चुनाव में कई दल और मुख्यमंत्री इस निर्भरता के चलते मात खा गए। अंततः हुआ यह कि 2004 में एनडीए सरकार के पतन और कई राज्यों में उलटे नतीजे आने से भाजपा तथा अन्य कई दल अपनी चुनावी रणनीति को बदलने पर मजबूर हुए। न केवल टिकट दावेदार बल्कि राजनीतिक दलों ने अपनी रणनीति में जमीनी तैयारी की तरफ लौटने में ही भलाई समझी। चुनावी सर्वेक्षणों से माहौल बनाने के बजाय भारतीय राजनीति एक बार फिर धरातल की तरफ लौटी। प्रमुख राजनीतिक दल विदेशी एजेंसियों तक की सेवाएं लेने की अपनी रणनीति के बजाय अपने खुद के सर्वे और तैयारी पर ज्यादा भरोसा करने लगे। भारतीय जनता पार्टी ने सन 2004 और 2009 की हार के बाद चुनाव की जमीनी तैयारी पर ज्यादा जोर देना शुरू किया और इसका फायदा उसे 2014 और 2019 के लोकसभा चुनाव के अलावा हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, महाराष्ट्र, उप्र समेत कई राज्यों के

विधानसभा चुनावों में जबरदस्त सफलता के रूप में मिला भी।

चुनाव सर्वेक्षण में सैंपल और प्रश्नावली

सैंपल -विधानसभा चुनाव में एक विधानसभा क्षेत्र के लिए प्रमुख रूप से दो दलों या उम्मीदवारों के बीच सीधा मुकाबला हो तो 100-125 मतदाताओं का सैंपल लिया जा सकता है लेकिन मुकाबला त्रिकोणीय हो तो सैंपल का आकार 300-350 मतदाताओं का लेना चाहिए। इसमें मतदाता सूची के आधार पर परिवारों को चुनना चाहिए। ऐसा परिवार चुनना बेहतर होता है जिसमें डेढ़ दर्जन सदस्य हों और जिसमें हर आयु वर्ग, लिंग, शिक्षा और रोजगार के लिहाज से ज्यादा वर्ग शामिल हों। सब सैंपल भी बनाए जा सकते हैं।

प्रश्नावली- इसमें जबाव देने वाले की उम्र - लिंग, समुदाय, व्यवसाय, पूर्व में किसे वोट दिया, वर्तमान में किसे देना चाहेंगे, पसंद का राजनीतिक दल, वर्तमान प्रतिनिधि के बारे में राय, संभावित प्रत्याशी कौन हो सकता है, प्रमुख मुद्दे, समस्याएं जैसे प्रश्न होने जरूरी हैं। कुछ प्रश्न एकदम सीधे होने चाहिए जिनके जबाव सीधे मिलें और मौखिक ही दर्ज किए जा सकें। कुछ प्रश्न हां या न उत्तर वाले होने चाहिए जबकि कुछ प्रश्न चार या पांच विकल्प वाले होने चाहिए। प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री कौन हो? ऐसे सवालों में उत्तर देने वाले से ही नाम जानना और विकल्पों में से कोई एक या कोई नहीं का विकल्प हो सकता है। यह

इसलिए क्योंकि अब ज्यादातर चुनाव में सभी या प्रमुख राजनीतिक दल प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का दावेदार तय कर चुनाव मैदान में उतरते हैं। यह चयन चुनाव को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण बिंदु बन गया है, इसलिए प्रश्नावली में यह प्रश्न रखना आवश्यक हो गया हैँ। हालांकि कुछ दल चुनाव के बाद चुने हुए सांसद या विधायकों द्वारा नेता चुने जाने की संवैधानिक व्यवस्था के हवाले से अपना प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री प्रत्याशी नहीं चुनने की बात कहते हैं। प्रश्नावली में ऐसे दलों के चुनाव अभियान के प्रमुख नेता या अध्यक्ष का नाम प्रश्नावली में शामिल किया जा सकता हैँ। प्रश्नावली ज्यादा लंबी नहीं होना चाहिए और सर्वेक्षणकर्ता को एक इंटरव्यु में अधिकतम 30 मिनिट से ज्यादा नहीं लगाना चाहिए। उसे जबाव देने वाले से सभी स्तर पर पारिवारिक या दोस्ताना कायम कर क्रमबद्ध तरीके से राय जाननी चाहिए। सर्वेक्षण की टाइमिंग महत्वपूर्ण है। कोई चुनावी सर्वेक्षण उस क्षेत्र में किस वक्त किया जा रहा है, उसके मुताबिक उत्तर हासिल होने की स्थिति बनती है। मसलन किसी क्षेत्र में प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री की चुनावी सभा होने वाली है तो सभा के पहले और बाद में किए साक्षात्कार में प्रश्नों के उत्तर बदले हुए हो सकते हैं। ऐसा ही राज्य या देश के स्तर पर किसी बड़े घटनाक्रम के बाद हो सकता है। व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार और समूह में साक्षात्कार के लिए अलग अलग प्रश्नावली होनी चाहिये। समूह में जबाब अलग तरीके से दिया जाता है और व्यक्तिगत रूप से जबाब अलग तरीके से दिया जाता है, यह

मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्तर पर समझने की आवश्यकता होती है। प्रश्नावली स्थानीय भाषा में हो और सर्वेक्षणकर्ता किसी दल या उम्मीदवार का समर्थन करता हुआ प्रतीत नहीं हों। ऐसे सर्वेक्षणों पर यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि ऐसे सवाल किसी मतदाता की स्वतंत्रता और गोपनीयता का हनन तो नहीं किया जा रहा। सर्वेक्षण का पूरा दारोमदार जिन मतदाताओं से सवाल पूछे गए हैं, उनके सहयोग पर निर्भर करता है। यह सहयोग सर्वेक्षणकर्ता पर निर्भर है कि वह कितना विश्वास हासिल कर भरोसमंद उत्तर प्राप्त कर दर्ज करता है। इसके लिए मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समझ आवश्यक है। सवालों का क्रम इस तरह होना चाहिए जिससे उत्तर देने वाला सहज रहे और सर्वेक्षणकर्ता को सही जानकारी मिल सके।

मैदानी सर्वेक्षण के बाद डाटा का विश्लेषण

जब मैदानी चुनावी सर्वेक्षण विधानसभा या लोकसभा चुनाव के लिए किया जा रहा हो और एक बड़े मतदाता सैंपल को लिया गया हो तो प्रश्नावली और उस पर मिली प्रतिक्रियाओं को कंप्युटर में विशेष रूप से डिजाइन किए गए सॉफ्टवेयर में सुरक्षित रखना चाहिए। इसमें तालिकाएं स्पष्ट रूप से बनाई जाना चाहिए, ताकि शोध और विश्लेषण करने वाली टीम उसका सटीक विश्लेषण कर पूर्वानुमान व्यक्त कर सके। इस प्रक्रिया में उन मतदाताओं के रिस्पांस को अलग से दर्ज करना आवश्यक है जिन्होंने

अपना मत अभी बनाया नहीं है या जिनका अभी बनाया गया मत बाद में मतदान के वक्त बदल भी सकता है। इसका सूक्ष्म विश्लेषण ही सटीक पूर्वानुमान की राह आसान कर सकता है। अपग्रेड कंप्युटर और अपग्रेड सॉफ्टवेयर का उपयोग करने से विश्लेषण और पूर्वानुमान व्यक्त करने मे आसानी होती है।

भारत के चुनावों के बारे में विस्तार से चर्चा से पहले हम एक बार फिर यह याद कर लें कि चुनावी सर्वेक्षण की अवधारणा मूलतः जनमत संग्रह या पब्लिक ओपिनियन पूल पर आधारित है। चुनावी सर्वेक्षण का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना जनमत संग्रह का। इसका प्रतिपादन जॉर्ज गेलाप ने 1935 में किया था। गेलाप के मुताबिक किसी मुद्धे पर पर जन अर्थात पब्लिक का क्या विचार होगा, इसे जाना जा सकता है। पहला जनमत संग्रहण पूल अमेरिका में बना और हर नए विचार की तरह इस विचार को भी विरोध झेलना पड़ा। इतना ही पूल ने पहला जनमत संग्रह 1946 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में किया और नतीजे उसकी भविष्यवाणी से ठीक उलट निकले। पूल के विरोधियों ने इसकी और ज्यादा आलोचना करना शुरू कर दिया। हालांकि बाद में यह पूल अपने निष्कर्षों के मामले में लगातार सटीक भविष्यवाणी की तरफ बढ़ता चला गया। भारत के संदर्भ में चुनावी सर्वेक्षण के साथ भी वैसा ही हुआ जैसा अमेरिका में पूल का हुआ था। भारत का पहला चुनावी आकलन भी नतीजे के विपरीत साबित हुआ। नई दिल्ली स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ

पब्लिक ओपिनियन ने 1977 के आम चुनाव से पहले सर्वेक्षण किया और भविष्यवाणी चुनाव नतीजों से खारिज हो गई। यह सर्वेक्षण जनता के मूड को जो साफ दिख रहा था, दर्ज नहीं कर पाए। इस सर्वेक्षण पर तत्कालीन सरकार का पक्ष लेने के आरोप भी लगे, क्योंकि जनता में मौजूदा सरकार के खिलाफ आक्रोश चरम पर था। इसे कोई भी महसूस कर सकता था, ऐसे में सर्वेक्षण का अनुमान साफ तौर पर अविश्वसनीय लग रहा था, साबित भी वही हुआ। जनता ने तत्कालीन इंदिरा सरकार को उखाड़ फैंका और जनता पार्टी की सरकार हुई, वह भी प्रचंड विजय के साथ। पहले ही सर्वेक्षण की भद पिटने के बाद यह काम एक दशक से ज्यादा समय तक बंद सा हो गया। हालांकि इस बीच दो लोकसभा आम चुनाव हो गए। चुनावी सर्वेक्षण व्यापक स्तर पर एक बार फिर 1989 के लोकसभा चुनाव में सामने आए।

1989 का लोकसभा चुनाव

1989 के चुनाव को लेकर समाचार पत्रों ने चुनाव विश्लेषण प्रकाशित किए। इसी चुनाव के पहले न्यूज मैग्जीन इंडिया टुडे के संपादक एस. व्यंकट नारायण ने एक वैज्ञानिक सर्वेक्षण कराया। इस सर्वेक्षण का संचानल एनडीटीवी के प्रणव राय ने किया। उन्होनें लगातार 15 दिनों तक लोगों से चुनावी मुद्धों को लेकर सवाल किये। मतदान के तीन सप्ताह पहले इस सर्वेक्षण के नतीजे प्रकाशित किए गए। इसके निष्कर्ष चुनाव परिणाम आने पर

सटीक निकले। लेकिन अगले ही चुनाव 1991 में इंडिया टुडे मार्ग ने चुनाव के पहले सर्वेक्षण कराया जो चुनाव पश्चात फेल साबित हुआ। लेकिन चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों का सिलसिला और उनसे हलचल मचने का क्रम तब से अब तक के चुनावों में रुका नहीं है। 1996 के चुनाव में बड़ी तादाद में चुनाव पूर्व सर्वेक्षण किए गए। इनमें प्रमुख रूप से टाइम्स ऑफ इंडिया, द हिंदू, राष्ट्रीय सहारा अखबार तथा इंडिया टुडे और द वीक मैग्जीन के सर्वे चर्चा में रहे। इनमें से ज्यादातर सर्वेक्षणों के नतीजे चुनाव के वास्तविक नतीजों के करीब रहे। तब यह माना गया कि चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के नतीजे या तो गलत ही साबित होते हैं या फिर वे सच के करीब साबित होते हैं।

सवाल यह है कि आखिर ऐसा क्यों होता है? दरअसल मतदाताओं के मतदान व्यवहार का अध्ययन करके चुनावों के बारे में नतीजों का अनुमान लगाया जाता है। यह वैज्ञानिक तरीका है। अगर सही तकनीक का प्रयोग किया जाए तो नतीजों की भविष्यवाणी हकीकत के करीब हो सकती है। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि सर्वेक्षण संपूर्ण क्षेत्र में और सभी मतदाताओं के बीच नहीं किया जा सकता। सर्वेक्षण में खासकर चुनाव के मामले में कई बार मुद्दे और दलों की स्थिति मतदाताओं के बीच एकदम साफ होती है और वह लगभग पूरे क्षेत्र में करीब करीब एक जैसी होती है, लेकिन कई बार अलग अलग इलाकों में और अलग अलग वर्ग में अलग राय या मंशा होती है। सन 1996, 1998, 1999, 2004, 2014 और 2019 के चुनाव

पूर्व सर्वेक्षणों और चुनाव नतीजों के अध्ययन से साफ होता है कि ज्यादातर बार सर्वे नतीजे की ही तरह रहे हैं। हालांकि जब स्थिति अस्पष्ट होती है तो सर्वे भी गलत साबित हो जाते हैं।

1991 के चुनावी सर्वेक्षण

जिसका अंत हो चुका हो उसे हम इतिहास कहने लगते हैं, और जब वह दर्ज करने लायक होता है तो उसे सुरक्षित कर लिया जाता है। क्योंकि बीते हुए का वर्तमान और भविष्य से सीधा रिश्ता होता है। इतिहास के सबक वर्तमान और भविष्य को बेहतर बनाने के काम में आ सके हैं। चुनावी सर्वेक्षण, भविष्यवाणियों और नतीजों की बात में हम इस अध्याय में 1991 के लोकसभा आमचुनाव की चर्चा करेंगे। इस चुनाव मे अखबारों ने नहीं सिर्फ पत्रिकाओं ने चुनाव सर्वेक्षण कराए और प्रकाशित किए थे। इनमें इंडिया टुडे, द वीक, संडे और फ्रंटलाइन शामिल हैं। यह सर्वेक्षण अप्रैल 1991 की शुरूआत से लेकर मई 1991 की शुरूआत तक करीब एक महीने के दौरान प्रकाशित हुए थे।मई की 21 तारीख को पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की तमिलनाडु के श्रीपेरम्बदूर में चुनावी सभा के दौरान आत्मघाती बम हमले में हत्या हो गई थी।इस वजह से चुनाव दो दौर में हुआ।एक दौर राजीव गांधी की हत्या के पहले और दूसरा दौर उसके बाद। पहले दौर के नतीजे बताते हैं कि राजीव गांधी चुनाव जीत गए थे लेकिन उनके गृह राज्य कहे जाने वाले उप्र समेत उत्तर भारत में उनकी पार्टी कांग्रेस की

स्थिति अच्छी नहीं रही थी।जबकि उनकी हत्या के बाद जिन राज्यों में चुनाव हुए वहां कांग्रेस की स्थिति ठीक रही और अंततः कांग्रेस की केंद्र में अल्पमत ही सही सरकार बन गई थी। अगर उनकी हत्या नहीं हुई होती तो शायद कांग्रेस 1991 में भी सत्ता में वापसी नहीं कर पाती।

बहरहाल इंडिया टुडे ने बाजार शोध सर्वेक्षण संस्था मार्ग से कराया गया सर्वेक्षण 15 मई 1991 के अंक में प्रकाशित किया था। यह सर्वेक्षण मार्ग ने 7 से 10 मई के बीच 51 महत्वपूर्ण संसदीय क्षेत्रों में किया था। कुल 20 हजार 312 मतदाताओं से राय जानी गई थी। इसके आधार पर इंडिया टुडे ने भविष्यवाणी की थी कि कांग्रेस को 233, भारतीय जनता पार्टी को 155 और राष्ट्रीय मोर्चा-वाम मोर्चा को 105 सीटें मिलेंगी

द वीक का सर्वेक्षण और भविष्यवाणी

वीकली न्यूज मैग्जीन द वीक ने 1991 के चुनाव के पूर्व छह सर्वेक्षण कराए तथा प्रकाशित किए। पत्रिका ने चुनाव पूर्व और चुनाव के दौरान किए गए सर्वेक्षणों में 115 लोकसभा क्षेत्रों को शामिल किया था। द वीक ने दलों को मिलने वाली सीटों की संख्या की भविष्यवाणी की थी। खास बात यह थी कि सर्वेक्षणों में सीटों के नतीजों की स्थिति बदलती रही। इसकी वजह मतदाता का मन बदलना था या राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव का असर, यह अलग अध्ययन का विषय हो सकता है। बहरहाल, 1991 के चुनाव

के नतीजों को लेकर द वीक का सर्वेक्षण संस्था मोड़ के साथ किया गया था।

पहला सर्वेक्षण

पहला सर्वेक्षण 6 से 9 अप्रैल 1991 के बीच हुआ था और इसमें 17 संसदीय क्षेत्रों के चार हजार मतदाताओं की राय ली गई थी। वीक ने 21 अप्रैल 1991 को प्रकाशित अंक में भविष्यवाणी की थी कि कांग्रेस को 279, भारतीय जनता पार्टी को 57 और राष्ट्रीय मोर्चा - वाममोर्चा को 144 सीटें मिलेंगी।

दूसरा सर्वेक्षण

दूसरा सर्वेक्षण 13 से 16 अप्रैल के बीच 17 लोकसभा क्षेत्रों में चार हजार मतदाताओं के बीच किया गया था। इसके नतीजे 28 अप्रैल के अंक में छापे गए थे। इनमें कांग्रेस को 317, भाजपा को 71 और रामो वामो को-108 सीटें मिलने की संभावना जताई गई थी। यानी कांग्रेस की सीटें पहले सर्वे के अनुमान से ज्यादा दर्शाई गई थीं और भाजपा की सीटों में भी इजाफा बताया गया था।जबकि रामोवामो की सीटें कम बताई गईं थीं।

तीसरा सर्वेक्षण

इस सर्वेक्षण में भी 17 लोकसभा क्षेत्र और चार हजार मतदाता शामिल किए गए थे। यह 5 मई के अंक में प्रकाशित हुआ। इसमें कांग्रेस को 297, भाजपा को 91 और रामो वामो को 108 सीटें मिलने का अनुमान जताया गया था।यानि कांग्रेस की सीटें दूसरे सर्वे की तुलना में घट गयीं,

भाजपा की बढ गयीं और रामो वामो की स्थिर रहीं थीं। यानि कांग्रेस को नुकसान, भाजपा को फायदा और रामो वामो को न फायदा न नुकसान का पूर्वानुमान बताया गया।

चौथा सर्वेक्षण

मोड का चौथा सर्वेक्षण 17 सीटों और चार हजार मतदाताओं के बीच किया गया। अप्रैल की 25 से 28 तारीखके बीच किए इस सर्वेक्षण के नतीजे 12 मई के अंक में छापे गए। इनमें अनुमान जताया गया कि भाजपा की बढ़त और बढ़ेगी यानी उसे इस बार 108 सीटें दी गईं, जबकि कांग्रेस को नुकसान का ट्रेंड बरकरार दर्शाते हुए उसे इस बार 270 सीटें दी गईं। जबकि रामोवामो को इस दफा - बढ़त दर्शाते हुए117 सीटें मिलने का अनुमान बताया गया।

पांचवां सर्वेक्षण

द वीक का यह सर्वे 29 अप्रैल से 5 मई के बीच 35 सीटों के 12 हजार मतदाताओं के बीच किया गया। यह इससे पहले के चार सर्वेक्षणों के आकार से बड़ा था।19 मई के अंक में प्रकाशित इस सर्वेक्षण के नतीजों में कांग्रेस को नुकसान का ट्रेंड और आगे बढ़ता दर्शाया गया। उसे 263 सीटें मिलती दिखाई गईं। जबकि पहली बार भाजपा को भी पिछले सर्वे की तुलना में नुकसान दिखाते हुए इस दफा उसे 105 सीटें दी गईं। रामो वामो को भी नुकसान दिखाते हुए इस बार 105 सीटें मिलने का अनुमान लगाया गया।

छठवां और अंतिम सर्वेक्षण

यह सर्वेक्षण कब किया गया, इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन 12 लोकसभा क्षेत्रों के तीन हजार मतदाताओं के बीच किए गए इस सर्वेक्षण के नतीजे द वीक के 16 जून वाले अंक में प्रकाशित किए गए यानी राजीव गांधी की हत्या के 25 दिन बाद। इसमें कांग्रेस को 258, भाजपा को 105 और रामो वामो को-123 सीटें मिलने का अनुमान जताया गया। इस दफा भाजपा को न नुकसान न फायदा, कांग्रेस को और ज्यादा नुकसान जबकि रामो वामो को 18 सीटों का लाभ मिलते दिखाया गया।

संडे का सर्वेक्षण

अंग्रेजी मासिक पत्रिका संडे ने 1 से 9 मई के बीच 43 चुने हुए संसदीय क्षेत्रों के 15 हजार से ज्यादा मतदाताओं के बीच सर्वेक्षण कराया। पत्रिका ने इसके अनुमान 19 मई के अंक में प्रकाशित किए यानी राजीव गांधी की हत्या के दो दिन पहले। इसमें कांग्रेस को 310, भाजपा को 83 और रामो- वामो को- 81 सीटें मिलती दिखाई गई थीं।

फ्रंटलाइन का सर्वे

न्यूज मैग्जीन फ्रंटलाइन ने मार्स-वर्स की मददसे 5 से 8 मई के बीच 35 संसदीय क्षेत्रों में 10 हजार 730 मतदाताओं की राय के आधार पर किए गए सर्वेक्षण के नतीजे 25 मई के अंक में छापे, यानी राजीव गांधी की हत्या के चार दिन बाद यह अंक बाजार में आया था। इसमें

कांगेस को 224, भाजपा को 140 तथा राष्ट्रीय मोर्चा-वाम मोर्चा को 115 सीटें मिलती दिखाई गई थीं।

1991 के चुनावी सर्वेक्षणों के अनुमान और असल नतीजे

द वीक के छह सर्वेक्षणों का औसत निकालें तो इस लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को 280, भाजपा को 90 तथा रामो वामो को 188 सीटें मिल रही थीं। इंडिया टुडे की भविष्यवाणी में भी कांग्रेस को 233, भाजपा को 155 और रामो वामो को-105 सीटें मिलती दिख रही थीं। फ्रंटलाइन के सर्वेक्षण के मुताबिक कांग्रेस को 224, भाजपा को 120 और रामो वामो को-115 सीटें मिलने की संभावना दर्शाई गई थी। इन दोनों की भविष्यवाणियों में कांग्रेस की सीटों में 86 का, भाजपा की सीटों से 57 का और रामो-वामों की सीटों से 34 सीटों का साफ तौर पर अंतर था। असल नतीजे में कांग्रेस को 227, भाजपा को 119 और रामो-वामो को महज 70 सीटें ही मिली थीं। साफ था कि किसी भी सर्वेक्षण के पूर्वानुमान की शक्ल असल नतीजों से नहीं मिली।

कांग्रेस को मिलीं सीटें फ्रंटलाइन के सर्वेक्षण के अनुमान के करीब थीं, उसने कांग्रेस को 224 सीटें मिलने का अनुमान प्रकाशित किया था।जबकि कांग्रेस को 227 सीटें हासिल हुई थीं। भाजपा को लेकर सभी सर्वेक्षणों के पूर्वानुमान गलत साबित हुआ। सर्वेक्षण पूर्वानुमानों में भाजपा को 80 के आसपास सीटें मिलती दिख रही थीं

जबकि उसे 119 सीटें हासिल हुई थीं। यानी पूर्वानुमानों से करीब 41 ज्यादा। इसी तरह रामोवामो को औसतन-81 से 144 सीटें मिलती दर्शाई गई थीं जबकि उसे कुल 70 सीटें ही हासिल हो सकीं। इस चुनाव के नतीजे के बाद कांग्रेस ने अल्पमत की सरकार बनाई और कांग्रेस के पीवी नरसिंहराव प्रधानमंत्री बने। उन्होंने कई क्षेत्रीय और छोटे दलों का समर्थन हासिल कर बहुमत हासिल किया। नरसिंहराव सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। लेकिन बहुमत के लिए सांसदों की खरीद-फरोख्त के गंभीर आरोपों का सरकार को सामना करना पड़ा था।झारखंड मुक्ति मोर्चा के नेता शिबू सोरेन को इस मामले में जेल तक जाना पड़ा। देश की सियासत में उथलपुथल मची रही। देश में राजनीतिक अस्थिरता का माहौल और ज्यादा गहरा गया। इसी कार्यकाल में पूरी दुनिया में वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की नीतियों का बोलबाला रहा। भारत ने भी नई आर्थिक नीति को अपनाया। इसके असर से भारतीय अर्थव्यवस्था में भी भारी बदलाव हुए।इसका असर आने वाले चुनावों और दलों की सियासत पर भी पड़ा। जनमत के लिए यह भारी उथलपुथल का दौर था। चुनावी सर्वेक्षण करने वाली संस्थाओं के लिए पूर्वानुमान व्यक्त करने का काम और कठिन हो गया था।

1996 का चुनाव, चुनावी सर्वेक्षण और नतीजे

1996 के आम चुनाव के पहले भारतीय राजनीति में भारी उथल पुथल हुई और कई दल टूटे, कई नए बने और

एक बरस पहले ही हुए कई राज्यों के विधानसभा चुनावों का भी असर सामने था। देश की सत्ताधारी पार्टी कांग्रेस की हालत पतली हो गई थी। ऐसा लग रहा था कि भारत की राजनीति में राष्ट्रीय दलों के दिन अब लद रहे हैं। क्षेत्रीय और कुछ राज्यों तक ही सीमित राष्ट्रीय दलों का प्रभाव बढ़ रहा था। चुनाव के पहले ही जोड़ तोड़ और सांठगांठ चरम पर थी।ऐसे में यह अनुमान लगाना भी मुश्किल हो रहा था कि कौन सा दल प्रमुख भूमिका निभाने वाला है।इस अस्पष्ट और धुंधले भरे सियासी परिदृश्य को लेकर कई संस्थाओं, समाचार पत्र पत्रिकाओं ने चुनाव पूर्व सर्वेक्षण कर भविष्यवाणियां कीं। जनादेश के पूर्वानुमान की भविष्यवाणी करने वाले मीडिया संस्थानों ने दावा किया था कि वे अस्पष्टता की धुंध को पोंछकर देश के सामने जनादेश की स्पष्ट झांकी सामने ला रहे हैं।हम इस चुनाव के पूर्वहुए प्रमुख जनमत सर्वेक्षणों और उनके अनुमानों का क्रमशः जिक्र और फिर विश्लेषण करेंगे।

इंडिया टुडे-

लिविंग मीडिया लिमिटेड के इस प्रकाशन ने 1989 में सटीक अनुमान जताए थे। 1996 में इंडिया टुडे हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में अपने प्रकाशन के 10 साल पूरे कर चुकी थी और उसकी साख थी।हिंदी संस्करण में अरुण पुरी संपादक थे। इस पत्रिका के 16 से 30 अप्रैल 1996 के अंक में चुनाव पूर्व सर्वेक्षण के नतीजे भविष्यवाणी की तरह छपे। पत्रिका ने मार्केटिंग एंड रिसर्च ग्रुप मार्ग से

सर्वेक्षण कराया था। यह सर्वेक्षण 27 से 31 मार्च के बीच 16 राज्यों के चुने हुए 50 संसदीय क्षेत्रों में किया गया था। इसमें 12 हजार 810 मतदाताओं से बात की गई थी। इसमें 83 फीसदी ग्रामीण और 78 फीसदी शहरी साक्षरों के अलावा, निरक्षर, विभिन्न आयु तथा आय वर्ग के लोगों को शामिल किया गया था।इसमें मजहब और लिंग का भी ध्यान रखा गया था। लेकिन इस सर्वे के प्रकाशित नतीजों को पत्रिका ने 1989 के चुनाव की तरह स्पष्ट तौर पर दलों को मिलने वाली सीटों की संख्या का अनुमान बताने के बजाए किस मुद्दे पर किस दल या नेता को कितने फीसदी लोगों ने पसंद या नापसंद किया, इस तरह प्रकाशित किया था। यह भी कहा गया कि एक से तीन फीसदी तक मतों का उतार चढाव नतीजे बदल सकता है। माना गया कि यह तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहराव पर एक तरह से जनमत संग्रह है। यह आरोप भी लगे कि यह कांग्रेस सरकार का कराया गया सर्वेक्षण था। इसकी वजह यह थी कि जिन जिन मुद्दों पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहराव को ज्यादा प्रतिशत समर्थन दर्शाया गया था, वे वास्तविक नतीजों में नरसिंहराव सरकार की हार का कारण साबित हुए। प्रधानमंत्री के तौर पर नरसिंहराव को सर्वाधिक 32 फीसदी लोगों की पसंद बताया गया था। गरीबी और बेरोजगारी हटाने के मुद्दे पर कांग्रेस को 34 और भाजपा को 28 फीसदी लोगों की पसंद बताया गया था। खासकर आर्थिक नीतियों के मामले में राव की तरफदारी दिखाई गई थी। इस सर्वे की हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

आउटलुक- डीबी मार्स का सर्वेक्षण

दिल्ली से प्रकाशित आउटलुक साप्ताहिक पत्रिका 1996 में नई नई थी, विनोद मेहता प्रधान संपादक और प्रकाश दीपक सूरी ने इसे अपनी सजधज और सामग्री के चलते इसे जल्द ही लोकप्रिय बना दिया था। चुनावी सर्वेक्षणों की दौड़ में शामिल होते हुए पत्रिका ने डीबी मार्स संस्था से सर्वेक्षण कराए। पत्रिका के पहले सर्वेक्षण में भविष्यवाणी की कि कांग्रेस गठबंधन को 191 सीटें मिलेंगी और भाजपा गठबंधन को 170 जबकि राष्ट्रीय मोर्चा-वाम मोर्चा को 139 तथा अन्य दलों को 37 सीटें मिलने का अनुमान जताया गया था। इस पत्रिका के दूसरे सर्वेक्षण में नतीजे बदल गए थे। इसमें कांग्रेस गठबंधन को 191 के बजाय झटका लगाते हुए 142 सीटों पर सिमटने की संभावना जताई गई। भाजपा गठबंधन को 170 से 22 सीटों के इजाफे के साथ 192 पर छलांग लगाने की उम्मीद जताई गई। रामो वामो का-139 का आंकड़ा बरकरार रखा गया लेकिन अन्य के खाते में 37 के बजाय 64 सीटें जाने की भविष्यवाणी की गई।

द वीक-मोड का सर्वेक्षण

मलयाला मनोरमा प्रकाशन की साप्ताहिक अंग्रेजी पत्रिका द वीक के संपादक मामेन मैथ्यु थे। पत्रिका ने इस बार भी मोड संस्था से सर्वेक्षण कराया। इसमें भविष्यवाणी की गई कि कांग्रेस गठबंधन को 32 फीसदी वोट और 145 से 170 सीटें मिलने की संभावना है। भाजपा गठबंधन को

28 प्रतिशत वोट और 190 से 215 सीटें मिलने का अनुमान जताया गया। रामो वामो को-20 फीसदी वोट के साथ 100 से 115 सीटें हासिल होने का अनुमान व्यक्त किया गया। अन्य दलों के खाते में 60 से 80 सीटें जाने का अनुमान बताया गया।

द हिंदू-सीएसडीएस सर्वेक्षण

'द हिंदू' चेन्नै और नई दिल्ली से एक साथ प्रकाशित दैनिक अंग्रेजी समाचार पत्र है और देश की राजनीति को उलटपुलट कर देने वाले बोफोर्स घोटाले को उजागर करने वाला अखबार है। मेसर्स कस्तूरी एंड संस लिमिटेड प्रकाशन का अखबार है। यह प्रकाशन फ्रंटलाइन न्यूज मैग्जीन भी प्रकाशित करता है। द हिंदू ने सीएसडीएस के मार्फत 1996 के चुनाव को लेकर दो सर्वेक्षण कराए। पहले सर्वेक्षण में कांग्रेस को 32.6, भाजपा को 25 और रामो वामो को-19 फीसदी वोट मिलने की संभावना जताई गई। अन्य दलों को महज 4.9 प्रतिशत वोट मिलने की संभावना व्यक्त की गई। द हिंदू के दूसरे सर्वेक्षण में कांग्रेस गठबंधन को 31.9, भाजपा गठबंधन को 26.4 और रामो वामो को-15.5 प्रतिशत मत मिलने की भविष्वाणी की गई लेकिन अन्य दलों के बारे में कोई बात नहीं कही गई।

टाइम्स पोल-सीएमएस का सर्वेक्षण

नई दिल्ली और मुंबई से प्रकाशित बेनेट कोलमेन एंड कंपनी के अंग्रेजी दैनिक 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने

चुनाव पूर्व सर्वेक्षण तीन हिस्सों में कराया। दो सर्वेक्षण लोकसभा चुनाव और एक सर्वे विधानसभा चुनावों को लेकर किया गया था। पहला अप्रैल के शुरू में, अंत में और तीसरा मई के पहले हफ्ते में किया गया था। अखबार के कार्यकारी संपादक गौतम अधिकारी तथा दिल्ली के स्थानीय संपादक रामिंदर सिंह थे। प्रकाशक थे रमेशचंद्र। पहले चरण का सर्वेक्षण सीएमएस यानी सेंटर फॉर मीडिया ने 80 लोकसभा क्षेत्रों में 25 हजार मतदाताओं की राय जानी। इसके नतीजे अखबार में 24, 25 और 26 अप्रैल को प्रकाशित किए गए थे। टाईम्स पोल - सीएमएस का दूसरा सर्व तमिलनाडु तथा हरियाण विधानसभा चुनाव के बारे में था। हरियाणा के बारे में निष्कर्ष 7 अप्रैल को तथा तमिलनाडु के बारे में निष्कर्ष 30 अप्रैल को प्रकाशित किए गए। लोकसभा चुनाव के बारे में अखिल भारतीय भविष्यवाणी के लिए हुए सर्वेक्षण का दूसरा चरण 5 तथा 6 मई को प्रकाशित हुआ था। इसके अलावा टाइम्स ऑफ इंडिया ने मोड के जरिए कराए सर्वे में देश के महत्वर्पूण लोकसभा क्षेत्रों की भविष्वाणियां भी प्रकाशित की थीं। यहां हम केवल लोकसभा चुनाव के बारे में प्रकाशित अनुमानों का ही जिक्र करेंगे, इसलिए पहले दो सर्वेक्षणों के निष्कर्षों की ही बात करेंगे। टाइम्स सीएमएस के पहले सर्वेक्षण में-

कांग्रेस गठबंधन को31 फीसदी वोट के साथ 135 से 150 सीटें, भाजपा गठबंधन को 23 प्रतिशत वोट के साथ 180 से 195 सीटें, जबकि रामो वामो को-26 फीसदी वोट के साथ 135 से 145 सीटें मिलने का अनुमान बताया गया

था। अन्य दलों को 20 प्रतिशत मत के साथ 62 से 66 सीटें दी गई थीं। टाइम्ससीएमएस के दूसरे सर्वेक्षण के - नतीजे में कांग्रेस गठबंधन को 162 से 180, भाजपा गठबंधन को 158 से 175 और रामो वामो को-140 से 150 सीटें मिलने का अनुमान बताया गया था। जबकि 56 से 60 सीटें मिलने की संभावना व्यक्त की गई थी।

दूरदर्शन - सीएसडीएस का एग्जिट पोल

मतदान के तुरंत बाद किए गए इस सर्वेक्षण को दूरदर्शन ने प्रसारित किया और मतगणना के दौरान भी इसका विश्लेषण किया गया। इस सर्वेक्षण के नतीजों में कांग्रेस गठबंधन को 142, भाजपा गठबंधन को 192 और रामो वामो को-132 सीटें दी गई थीं और अन्य के खाते में 67 सीटें दिखाई गई थीं।

1996 के चुनाव जनमत सर्वेक्षणों का विश्लेषात्मक विवेचन

सर्वेक्षणों की चर्चा हमने 'इंडिया टुडे मार्ग' के सर्वेक्षण से शुरू की थी। विश्लेषण भी वहीं से शुरू करते हैं। इस सर्वेक्षण में 16 राज्यों के 50 लोकसभा क्षेत्रों के 12 हजार 810 मतदाताओं की राय ली जाने का दावा किया गया था। इन मतदाताओं की राय करोड़ों मतदाताओं की राय मानने के पीछे क्या वैज्ञानिक कारण हैं, यह सर्वेक्षण के नतीजे प्रकाशित करने के साथ नहीं बताया गया। सर्वेक्षण में मुद्दे और उन पर पूछे गए सवाल इस तरह थे मानो वे चुनावी सर्वेक्षण के लिए नहीं बल्कि तत्कालीन

प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहराव की तरफ से कराई गई रायशुमारी हो। हर मुद्दे पर मतदाता नरसिंहराव को सर्वाधिक तवज्जो देता दिखाया गया। कई सवालों खासकर नई आर्थिक नीति लागू कर देश की अर्थव्यवस्था में हलचल मचाने वाले प्रधानमंत्री और उनकी पार्टी कांग्रेस को आर्थिक नीति, मुद्दों को हल करने की उनकी क्षमता गरीबी-बेरोजगारी हटाने और महंगाई कम करने के मामले में अन्य नेताओं और पार्टियों की तुलना में ज्यादा अंक दि ए गए। यह सवाल उठे कि क्या यह सर्वे कांग्रेस ने ही कराया था? चुनाव के नतीजों ने नरसिंहराव को उन्हीं मुद्दों पर जोरदार पटखनी दी जिन पर सर्वेक्षण के नतीजे उन्हें भाजपा समेत अन्य सभी दलों और नेताओं से भारी बता चुके थे।

टाइम्स पोल -सीएमएस सर्वेक्षण-

इनके दो सर्वेक्षण को देखकर ऐसा लगता है कि कांग्रेस की हालत को दूसरे सर्वेक्षण के नतीजों में सुधार दिया गया हो। जिन मुद्दों पर कांग्रेस को तवज्जो मिलना कम हुई थी, उन्हीं मुद्दों पर बाद में जनता पसंद करने लगी। पहले सर्वेक्षण में कांग्रेस को 135 से 150 और दूसरे में 162 से 180 सीटें दी गईं। इस बढ़त का और जनता के मूड में कांग्रेस और नरसिंहराव के प्रति पॉजीटिव बदलाव की कोई प्रभावी वजह न तो सर्वे में दिख रही थी और न ही वह नतीजे में तब्दील ही हुई। रामो वामो की सीटें भी-100-115 से 140-150 हो गईं। दोनों को ही बढ़त एक साथ

अटपटी लगने वाली भविष्यवाणी थी, जो नतीजे में भी साबित हुआ। ऐसा नहीं है कि दो सर्वेक्षणों के बीच जनमत का झुकाव नहीं बदल सकता, लेकिन टाइम्स ने मप्र के संदर्भ में कांग्रेस को एक सीट मिलने की भविष्यवाणी कर दी थी, जो साफ तौर पर बेतुकी थी। इसे कांग्रेस ने तो नहीं ही स्वीकार किया, प्रमुख विरोधी दल भाजपा को भी अटपटी ही लगी।

दूरदर्शन -सीएसडीएस एग्जिट पोल-

दूरदर्शन पर प्रसारित और विश्लेषित एग्जिट पोल व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय जनमत की दिशा को बता रहे थे। यह दिशा कमोबेश अन्य सर्वेक्षणों के नतीजों की भी दिशा थी, कि कांग्रेस की सीटें कम होंगी, भाजपा को बढ़त मिलेगी और रामोन पर पहुंचेगावामो तीसरे स्था-। लेकिन ज्यादातर सर्वेक्षणों की तरह इस एक्जिट पोल के नतीजे भी राज्य स्तर पर गलत ही साबित हुए। उसकी भविष्यवाणी कर्नाटक के बारे में पूरी तरह गलत साबित हुई। मप्र, उप्र, बिहार, केरल तथा आंध्रप्रदेश के बारे में भी ऐसा ही हुआ। अखिल भारतीय सर्वेक्षणों के साथ किए गए राज्य स्तरीय सर्वेक्षण साफ तौर पर गलत अनुमान बताने वाले साबित हुए। हालांकि राज्य स्तर के सर्वेक्षणों में तमिलनाडु के बारे में सन टीवीऑप्ट रिसर्च ग्रुप का - सर्वेक्षण सही साबित हुआ। इस सर्वेक्षण ने डीएमके को 58 फीसदी वोट और 204-229 सीटें तथा एआईएडीएमके को 23 प्रतिशत मत और 5-25 सीटें मिलने की भविष्यवाणी

की थी। नतीजे आए तो डीएमके फ्रंट को 55 फीसदी वोट और 220 सीटें हासिल हुईं जबकि एआईएडीएमके को 26 प्रतिशत वोट तथा सिर्फ चार सीटें ही मिलीं।

एक बात स्पष्ट रूप से सामने आई कि 1996 के आम चुनाव को लकर किए गए इन सर्वेक्षणों के तरीके, स्वीकार्यता और उपयोगिता पर सवालिया निशान ही लगे। सर्वेक्षणों की पारदर्शिता को लेकर भी सवाल उठे। राष्ट्रीय स्तर पर कई सर्वेक्षण और राज्य स्तर पर ज्यादातर सर्वेक्षण भविष्यवाणी के मामले में गलत ही साबित हुए। यह असफलता दर्शाती है कि अवधारणा, परिभाषा और सर्वेक्षण प्रविधि यानी मैथालाडाजी में सामंजस्य नहीं था। सर्वेक्षण के नतीजों में वोट प्रतिशत के आधार पर सीटों की संख्या बताई गई, लेकिन दोनों में सामंजस्य हर मामले में एक जैसा नहीं होता। ज्यादातर सर्वेक्षण संस्थाओं ने अपनी प्रविधि यानी सर्वेक्षण किस तरह किए गए, यह नहीं बताया।इस मामले में द हिन्दू सीएसडीएस ने साफ तौर पर कहा कि यह सर्वेक्षण नतीजों के पूर्वानुमान के उद्देश्य से नहीं किया गया है। यह भी कहा गया कि पार्टी को मिलने वाले मतों का सीटों से संबंध नहीं है। जबकि कई सर्वेक्षणों ने सीटों का अनुमान बताया लेकिन सर्वेक्षण का तरीका और वे आंकड़े नहीं बताए, जिन पर पूर्वानुमान आधारित थे। सर्वेक्षण संस्थाओं की यही सबसे बड़ी कमजोरी उभरकर सामने आई। एक बात यह भी कि इतने बड़े देश में इतने छोटे सैंपल लेकर सटीक अनुमान कैसे बताया जा सकता है?खामियां दूर करने और ज्यादा व्यापक सर्वेक्षण किए

जाने की जरूरत को रेखांकित किए जाने को लेकर 1996 के आम चुनाव के पूर्व किए गए सर्वेक्षण और उनके नतीजे महत्वपूर्ण माने जाने चाहिए।

1996 में ये रहे थे असल नतीजे

543 सीटों के लिए 27 अप्रैल से 27 मई तक छह चरणों में हुए मतदान के नतीजों की शक्ल चुनाव पूर्व हुए सर्वेक्षण और मतदान के तुरंत बाद हुए एग्जिट पोल के पूर्वानुमानों से अलग थे। भाजपा गठबंधन में पांच दल, रामो वामो में-16 दल और कांग्रेस गठबंधन में एआईएडीएमके शामिल थी। कांग्रेस को 141 सीटें मिलीं और उसकी सहयोगी एआईएडीएमके को कोई सीट नहीं हासिल हुई। भाजपा गठबंधन में भाजपा को 161, शिव सेना को 15, समता पार्टी और अकाली दल को 8-8 तथा हरियाणा विकास पार्टी को 3 सीटें मिलीं। रामोवामो में जनता दल - को 46, माकपा को 32, तमिल मनीला कांग्रेस को 20, समाजवादी पार्टी और डीएमके को 17-17, तेलगुदेशम नायडू को 16, भाकपा को 13, आरएसपी और असम गण परिषद को 5-5, कांग्रेस तिवारी को 4, फॉरवर्ड ब्लॉक को 3, मप्र विकास कांग्रेस को 2, महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी, यूनाइटेड गोवंस डेमोक्रेटिक पार्टी, ऑटोनॉमस स्टेट डिमांड कमेटी तथा मजलिस इत्तादुल मुसलमीन को 1-1 सीट मिली। अन्य दलों में बहुजन समाज पार्टी को सर्वाधिक 11, मुस्लिम लीग को दो तथा झारखंड मुक्ति मोर्चा सोरेन, सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट तथा भारतीय लोक पंचायत को 1-1 सीट

हासिल हुई। सबसे बड़े दल के रूप में उभरी भारतीय जनता पार्टी ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार बनाई लेकिन यह सरकार 13 महीने ही चल सकी।

नतीजे एक नजर में	
गठबंधन	**सीटें हासिल**
भाजपा	195
रामोवामो	184
कांग्रेस	141
अन्य	23
कुल	543

1996 चुनाव की सियासी स्थिति पर एक नजर

ग्यारहवीं लोकसभा के लिए हुए इस चुनाव में कई बड़े नेताओं ने दो सीटों से चुनाव लड़ा। भाजपा के शीर्ष नेता अटल बिहारी वाजपेयी उप्र की लखनऊ और गुजरात की गांधीनगर दोनों सीटों से जीते। इसी तरह कांग्रेस अध्यक्ष प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहराव आंध्रप्रदेश की नांदयाल और उड़ीसा की बहरामपुर सीटों से चुनाव जीते। बसपा सुप्रीमो कांशीराम दो सीटों में से एक पर हार गए। वे पंजाब की होशियारपुर सीट से जीतकर संसद पहुंचे। इसी तरह सपा प्रमुख मुलायम सिंह यादव भी दो में से एक ही सीट जीत पाए। वे अपनी पारंपरिक सीट मैनपुरी से लोकसभा पहुंचे। वाजपेयी ने गांधीनगर और नरसिंहराव ने नांदयाल

सीट छोड़ दी। इस तरह 543 सीटों में से दो सीटें रिक्त हो गईं। सांसदों की संख्या 541 रह गई।

ग्यारहवीं लोकसभा यानी 1996 के चुनाव के नतीजों की पूर्व पीठिका कांग्रेस के विभाजन से तय हो चुकी थी। बहुचर्चित हवाला कांड में जैन बंधुओं की डायरी से निकले तूफान ने भी भारतीय राजनीति को डांवाडोल कर दिया। भाजपा अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी ने चुनाव न लड़ने और बेदाग साबित होने के बाद ही संसद में जाने का ऐलान कर दिया। भाजपा इस दांव से भारी हो गई। मजबूरन कांग्रेस को भी हवाला दागियों को टिकट नहीं देने का ऐलान करना पड़ा।

कांग्रेस के विभाजन से अखिल भारतीय कांग्रेस तिवारी बनी जिसे इंदिरा गांधी के बगावत के समय हुए विभाजन में मिले प्रचलित नाम इंका की ही तरह तिंका भी कहा गया। यह पार्टी भी चुनाव मैदान में उतरी और माधवराव सिंधिया ने मप्र विकास कांग्रेस बनाकर चुनाव लड़ा। इन दोनों पार्टियों ने कांग्रेस के लिए मुसीबत खड़ी की। तिकां चार सीटें जीती लेकिन उसके नेता अर्जुन सिंह अपने गृह क्षेत्र मप्र के सतना से चुनाव हार गए। उन्हें बसपा प्रत्याशी ने पराजित कर दिया। सिंधिया की पार्टी को दो सीटें मिलीं। उधर कांग्रेस के एआईएडीएमके से हुए गठबंधन के खिलाफ वहां कांग्रेस दो फाड़ हो गई। पी. चिदंबरम ने तमिल मनीला कांग्रेस बनाई और डीएमके से गठबंधन करके तमिलनाडु में कांग्रेस गठबंधन को धो डाला।चुनाव के नतीजे सरकार बनाने के लिए होते हैं।

राष्ट्रपति ने सबसे ज्यादा सांसद वाली भाजपा को सरकार बनाने का पहले न्यौता दिया। संख्या बल नहीं जुटने के बावजूद भाजपा के नेता अटल बिहारी वाजपेयी ने सरकार बनाई लेकिन संसद में बहुमत साबित करने वाले दिन ऐतिहासिक भाषण देकर प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने ऐलान किया कि वे खरीद फरोख्त की राजनीति नहीं करना चाहते थे और एक वोट से सरकार गिर जाने से बेहतर समझते हैं कि फिर जनता के बीच जाएं और हम पूरी ताकत से जीतकर यहां लौटेंगे। वाजपेयी सरकार इस बार महज 13 दिन ही चल सकी।

इसके बाद रामो वामो ने अन्य दलों के साथ मिलकर संयुक्त मोर्चा बनाया और जिस कांग्रेस के खिलाफ चुनाव लड़ा, उसी कांग्रेस के समर्थन से सरकार बनाई। कर्नाटक के तत्कालीन मुख्यमंत्री जनता दल के एचडी देवगौड़ा देश के प्रधानमंत्री बने। पहली दफा ऐसा हुआ जब लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी विपक्ष में और नंबर दो की पार्टी न सत्ता पक्ष में और न विपक्ष में थी। कांग्रेस संयुक्त मोर्चा सरकार को बाहर से समर्थन दे रही थी। नतीजतन जैसा कि अंदेशा था कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया और देवगौड़ा सरकार गिर गई। यह फैसला कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष सीताराम केसरी ने लिया था। राजनीतिक अस्थिरता और उठापटक के बीच देश एक बार फिर चुनाव का सामना कर रहा था। जनता के बीच चुनाव में तय करने के लिए अस्पष्टता का गहरा कुहासा था। इस दौरान चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और भविष्यवाणियां करने वाली संस्थाओं और

चुनाव विश्लेषक राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों की महात्वाकांक्षाओं के टकराव के बीच जनता की आकांक्षा जानने के लिए सर्वेक्षणों के लिए मैदान में उतर गए थे।

1998 का चुनाव और एग्जिट पोल

बारहवीं लोकभा के लिए हुए 1998 में हुए चुनाव के पहले और दौरान भी किसी दल या गठबंधन को स्पष्ट बहुमत मिलने के आसार नजर नहीं आ रहे थे। ज्यादातर सर्वेक्षण इसी तरफ इशारा कर रह थे। इस चुनाव में भी ज्यादातर एग्जिट पोल्स के अनुमान सही थे। तब सभी एग्जिट पोल्स में भाजपा की अगुआई वाले गठबंधन एनडीए को 200 से ज्यादा सीटें व बहुमत के करीब बताया गया। जबकि कांग्रेस की अगुआई वाले गठबंधन को 200 से कम सीटों का अनुमान लगाया गया था। जब नतीजे आएं तो भाजपा को +252, कांग्रेस को +166 और अन्य को 119 सीटें मिली थीं।

1998 लोकसभा चुनाव एग्जिट पोल और असल नतीजे

सर्वेक्षण	एनडीए	यूपीए	अन्य
आउटलुक एसी नील्सन	238	149	156
डीआरएस	249	155	139
इंडिया टुडे सीएसडीएस	214	164	165
फ्रंटलाइनसीएमएस	235	155	182
वास्तविक नतीजे	**252**	**166**	**119**

सीएमएस- नेट टीवी का सर्वेएशिया

सीएम एएस-एशियानेट ने चुनाव के पहले चरण के तीन दिन पहले सर्वेक्षण किया। उस वक्त कोई लहर नहीं थी लेकिन दलों को मिलने वाले संभावित वोट के प्रतिशत में बदलाव के साफ संकेत मिल रहे थे।कांग्रेस में सोनिया गांधी के आ जाने से जोश आ चुका था और इससे पूर्व में 9.6 वोट प्रतिशत बढ़ने की संभावना के बावजूद भाजपा को नुकसान होने की आशंका जताई जा रही थी। सर्वेक्षण के नतीजे में भाजपा को 230 से 240 सीटें मिलने की संभावना जताई गई जबकि सोनिया गांधी के आने से उत्साहित कांग्रेस को 155 सीटें मिलने का अनुमान जताया गया था। यह सर्वेक्षण 4 से 7 फरवरी 1998 के बीच किया गया था। भाजपा और कांग्रेस दोनों ही अन्य दलों से गठबंधन कर चुनाव लड़ रहे थे। भाजपानीत एनडीए में भाजपा के पारंपरिक सहयोगी अकाली दल, शिव सेना के अलावा बीजू जनता दल, समता पार्टी, एआईएडीएमके, लोकशक्ति, हरियाणा विकास पार्टी, तृणमूल कांग्रेस, तेलगुदेशम-लक्ष्मी पार्वती गुट थे तो कांग्रेस के साथ डीएमके थी। बसपा पंजाब में और समाजवादी पार्टी तथा रिपब्लिकन पार्टी आफ इंडिया महाराष्ट्र में कांग्रेस के साथ थीं। दिसंबर 1997 के पहले हफ्ते में लोकसभा भंग होने के बाद सीएमएसशियानेट टीवी का यह चौथा सर्वेक्षण थाए-।

जनवरी में किए गए फ्रंटलाइन-सीएमएम सर्वे के अनुमान और सीएमएस-एशियानेट टीवी के इस चौथे

सर्वेक्षण में भाजपा की सीटों में इजाफे की बढ़त दिखाई गई थी और कांग्रेस को भी सोनिया फैक्टर के चलते कुछ बढ़त की संभावना जताई गई थी, लेकिन लोकसभा चुनाव के ओवरऑल नतीजे कमोबेश एक जैसे ही दिखने की संभावना दर्शाई गई थी।

सर्वे के मुताबिक एक बार फिर त्रिशंकु लोकसभा यानी हंग पार्लियामेंट के आसार नजर आ रहे थे, जैसे कि 1996 के नतीजों में हुआ था और नतीजन सरकार गिरने और लोकसभा भंग होने के फैसले सामने आ चुके थे। भाजपा गठबंधन को इस चुनाव में भी कोई नया साथी दल नहीं मिला था और इन पूर्व अनुमानों भी वह सामान्य स्पष्ट बहुत से 30 सीट पीछे दिख रही थी। यानी 12 वीं लोकसभा की शक्ल भी 11 वीं लोकसभा की ही तरह होने का अनुमान था।

सर्वेक्षण करने वाली संस्थाओं में सीएमएस पहली संस्था थी जिसने सर्वेक्षण कर भविष्यवाणी कर दी थी कि 12 वीं लोकसभा भी त्रिशंकु होगी यानी भाजपा सबसे बड़ा दल लेकिन बहुमत से दूर रहेगी। फरवरी के पहले सप्ताह के आखिरी में भाजपा मप्र, महाराष्ट्र और उप्र में अपना प्रदर्शन मामूली बेहतर करती दिख रही थी लेकिन उसकी लोकसभा में सीटें 200 को पार करती नहीं दिख रही थीं। दूसरी तरफ कांग्रेस आंध्रप्रदेश, कर्नाटक में बेहतर प्रदर्शन करने की तरफ बढ़ती दिख रही थी, जहां सोनिया गांधी सर्वाधिक सभाएं कर रही थीं। इस चुनाव के नतीजे मप्र, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश की सरकारों की स्थिरता पर पड़ने की संभावना

थी। जनवरी के आखिरी सप्ताह से फरवरी के पहले हफ्ते में हुए दो सर्वे के अनुमान बता रहे थे कि भाजपा उत्तर तथा दक्षिण के राज्यों में एक फीसदी वोट की बढ़त लेती दिख रही थी। जबकि पूर्व के राज्यों में उसे 0.6 फीसदी की वृद्धि मिलती दिख रही थी। इसी अंतराल में कांग्रेस को दक्षिण में 1.1 और पूर्व के राज्यों में 0.5 फीसदी बढ़त मिलने का अनुमान जताया गया था। उसे पूर्व में तीन और दक्षिण में छह सीटें ज्यादा मिलने का अनुमान जताया गया था। यानी उड़ीसा, बंगाल आदि में तीन और आंध्रप्रदेश, कर्नाटक में छह सीटों का इजाफा दर्शाया गया था। संयुक्त मोर्चे को बिहार, उप्र, कर्नाटक तथा उड़ीसा में नुकसान जारी रहने के आसार थे। करीब छह फीसदी मतदाता ऐसे बताए गए थे जो अभी तय नहीं कर पाए थे कि वे किसके पक्ष में जाएंगे। इस श्रेणी के मतदाताओं के प्रतिशत में जनवरी के आखिरी सप्ताह से फरवरी के पहले सप्ताह के बीच इसमें 0.3 से 0.4 फीसदी तक का फर्क आ गया था।

एशियानेट- सर्वे के अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष

- हर लोकसभा क्षेत्र में हर छठवां मतदाता प्रत्याशी को लेकर नाखुश था। पश्चिम बंगाल, उप्र, कर्नाटक और तमिलनाडु में 25 फीसदी मतदाता प्रत्याशी से नाखुश नजर आए। कुल मिलाकर औसतन 50 फीसदी मतदाता प्रत्याशी चयन से असंतुष्ट थे।
- ओवरऑल 60 फीसदी मतदाताओं की राय इस चुनाव में राष्ट्रीय मुद्दों को प्राथमिक मानने की थी।

जबकि 25 फीसदी की राय में राज्य और स्थानीय मुद्दे ज्यादा महत्वपूर्ण थे। ओड़िसा और आंध्रप्रदेश जैसे राज्यों में मतदाताओं का कहना था कि उनके लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तर के मुद्दे बराबर महत्वपूर्ण है। मप्र में स्थानीय और राज्य स्तर के मुद्दों को ज्यादा महत्वपूर्ण बताया गया।

- जबकि सुशासन, भूख-न-भय-न भ्रष्टाचार का नारा भी मतदाताओं पर तेजी से असर कर रहा था। महंगाई जनवरी के आखिरी में 10 से 12 फीसदी मतदाताओं के लिए सबसे बड़ा मुद्दा था जो फरवरी के पहले हफ्ते के आखिर में करीब 25 फीसदी मतदाताओं का सबसे बड़ा मुद्दा बन गया। यह जैसे जैसे चुनाव प्रचार आगे बढ़ रहा था, प्रतिशत भी बढ़ता दिख रहा था।
- 10 फीसदी मतदाता जातिवाद और सम्प्रदायवाद को बड़ी समस्या मान रहे थे।
- 1996 के चुनाव की तुलना में 1998 के चुनाव में मतदान करने की वजह या जिस मुद्दे पर वो मतदान करने वाले हैं, उसे बदलने वाले मतदाताओं का प्रतिशत का प्रतिशत तेजी से बदल गया। कई राज्यों में तो यह बदलाव 30 फीसदी तक पहूंच गया। इसकी वजह दलों में टूट, गठबंधन में बदलाव और नई पार्टियों का उदय रहा। दूसरी वजह प्रत्याशी का चेहरा, वर्तमान सांसद का परफार्मेंस और पुराने

प्रत्याशियों के प्रति अरुचि में वृद्धि भी रही। इसका लाभ भाजपा के प्रति रुझान बढ़ने में दिखा।

- इस सर्वे में 70 फीसदी लोगों ने सोनिया गांधी को एक माह के दौरान चुनाव प्रचार करते देखा, सुना। इतने कम समय में किसी नेता को लेकर बीते चालीस साल में ऐसा असर नहीं देखा गया था। दूरदर्शन ने सोनिया गांधी को लांच कर दिया था। इतने कम समय में सोनिया की पापुलैरिटी की तुलना केवल अटल बिहारी वाजपेयी के अलावा किसी अन्य नेता से राष्ट्रीय स्तर पर नहीं हो रही थी। दक्षिण के राज्यों में टीवी और अखबारों में सोनिया की सभाओं की खबरें व्यापक रूप से मतदाताओं तक पहुंची। दूसरी तरफ बिहार, ओड़िसा और बंगाल में 20 फीसदी लोगों ने कहा कि उन्होंने रेडियो पर सोनिया के बारे में और सोनिया को सुना था।

फिर सरकार गिरी, फिर चुनाव

1998 में सबसे बड़े दल के रूप में फिर उभरी भारतीय जनता पार्टी ने एक बार फिर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में अल्पमत सरकार बनाई। यह सरकार 13 महीने ही चल पाई। जिन दलों के सहयोग से वाजपेयी सरकार चल रही थी, उसमें ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस और जयललिता की एआईएडीएमके शामिल थीं। ये दोनों नेता समय समय पर सरकार के सामने अपनी मांगें

मनवाने के लिए सियासी पैंतरे अपना रही थीं। इनमें केंद्र सरकार में पसंद के मंत्रालय लेने के अलावा अन्य मामलों में भी सरकार को असुविधा का सामना करना पड़ रहा था। हालात बार बार ऐसे बन रहे थे कि सरकार अब गिरी की तब गिरी। अंततः अल्पमत सरकार का अल्प समय में पतन हो गया।देश को एक बार फिर चुनाव का सामना करना पड़ा।समर्थन और विरोध की पल पल बदलती कलन को और कठिन बना जनमानस के आ सियासत ने दिया था।

1999 का चुनाव : अनुमान और हकीकत का अंकगणित

सर्वे	एनडीए	यूपीए	अन्य
इंडिया टुडे - इनसाईट	336	146	80
एचटी-नील्सन	300	146	95
आउटलुक-सीएमए	329	145	39
टाईम्स पोल-डीआरएस	332	138	
वास्तविक नतीजे	**296**	**134**	**113**

2004 में एग्जिट पोल्स के अनुमान

2004 के बाद अगले चुनाव यानी 2009 में भी एग्जिट पोल्स फेल हुए। ज्यादातर एग्जिट पोल्स में यह तो बताया गया कि यूपीए को एनडीए पर बढ़त मिलेगी लेकिन किसी ने भी यह अनुमान नहीं लगाया था कि कांग्रेस अकेले ही 200 के पार पहुंच जाएगी। परिणाम घोषित हुए तो कांग्रेस को अकेले 206 और यूपीए को 262 सीटें मिलीं।

इसी तरह 2015 के बिहार विधानसभा चुनाव के दौरान भी एग्जिट पोल्स सही अनुमान लगाने में पूरी तरह नाकाम साबित हुए। सभी एग्जिट पोल्स में बीजेपी को जेडीयू-आरजेडी गठबंधन पर बढ़त बताई गई थी लेकिन नतीजे ठीक उलट आए। 58 सीटों पर सिमट गई, जबकि जेडीयू आरजेडी गठबंधन ने-178 सीटों पर जीत का परचम लहराया।

सर्वे	एनडीए	यूपीए	अन्य
आउटलुक-एमडीआरए	290	169	99
आजतक मार्ग-ओआरजी	248	190	105
एनडीटीवी-इंडियन एक्सप्रेस	250	205	120
स्टार-सी वोटर	275	186	98
वास्तविक नतीजे	**189**	**222**	**132**

2009 के सर्वे के अनुमान और वास्तविक नतीजे

सर्वे	एनडीए	यूपीए	अन्य
स्टार न्यूज-एसी नील्सन	197	199	136
टाइम्स नाउ	183	192	162
एनडीटीवी	177	216	150
हेडलाइंस टुडे	180	191	172
वास्तविक नतीजे	**159**	**262**	**79**

2014 के सर्वे के अनुमान और वास्तविक नतीजे

सर्वे	एनडीए	यूपीए	अन्य
एबीपी-नील्सन	281	97	165

टाइम्स नाउ-ओआरजी	249	148	146
सीएनएन-आईबीएन	280	97	166
सीएसडीएस-लोकनीति-हेडलाइंस टुडे-सिसरो	272	115	156
चाणक्य	340	70	133
इंडिया टीवी-सी वोटर	289	101	153
एनडीटीवी	279	103	161
वास्तविक नतीजे	**335**	**59**	**148**

2014 में भी ज्यादातर सही साबित हुए थे एग्जिट पोल्स

2014 के लोकसभा चुनाव के दौरान एग्जिट पोल्स की बात करें तो ज्यादातर के अनुमान सही पाए गए थे। ज्यादातर एग्जिट पोल्स में बीजेपी की अगुआई में एनडीए को सरकार बनाने के करीब बताया गया था। जब नतीजे आए तो भाजपा को खुद के दम पर बहुमत मिल गया और एनडीए 336 सीटों पर विजयी रहा। कांग्रेस 44 सीटों पर सिमटकर रह गई थी।

जब नतीजों के अनुमान में पूरी तरह फेल हुए एग्जिट पोल्स

2014 लोकसभा चुनाव के दौरान एग्जिट पोल्स के अनुमान बहुत हद तक सही रहे, लेकिन उससे पहले लगातार 2 आम चुनावों में एग्जिट पोल्स सही भविष्यवाणी करने में बुरी तरह नाकाम हुए थे। एग्जिट पोल्स की नाकामी का सबसे चर्चित वाकया 2004 का है। उस वक्त

ज्यादातर एग्जिट पोल्स में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एनडीए सरकार के फिर सत्ता में आने की भविष्यवाणी की गई थी लेकिन नतीजे बिल्कुल उलट आए। एनडीए को 189 सीटें मिलीं और कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी की अगुआई वाले यूपीए को 222 सीटें मिलीं और सोनिया गांधी के बहुचर्चित प्रधानमंत्री पद स्वीकार करने से 'इंकार' के बाद पूर्व वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने थे।

2019 का लोकसभा आम चुनाव

इस आम चुनाव के पहले आए चुनावी सर्वेक्षण जनमत का ठीक ठीक अंदाजा नहीं लगा सके। लगभग सभी सर्वे यह तो संकेत दे रहे थे कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार फिर से बन सकती है लेकिन ज्यादातर सर्वे यह संकेत भी जता रहे थे कि भाजपा की सीटें खासी कम हो सकती हैं और एनडीए भी बहुमत के करीब पहुंचकर ठिठक सकता है। राष्ट्रवाद की प्रचंड लहर और मोदी सरकार के खिलाफ कोई बड़ा मुद्दा नहीं होने के चलते जनता भाजपा को अपने बूते पर ही प्रचंड बहुमत देने जा रही है, इसका अनुमान नहीं लगाया गया था। इस अर्थ में देखा जाए तो चुनाव पूर्व सर्वेक्षण जनमत की मंशा या कहा जाए कि उसकी नब्ज नहीं पकड़ सके जब नतीजे आए तो भारतीय जनता पार्टी ने 300 से ज्यादा सीटें हासिल की और एनडीए की फिर सरकार बनी। हालांकि इस मामले एग्जिट पोल्स के नतीजे जरूर वास्तविक नतीजों को

ज्यादा स्पष्ट रूप से इंगित करने में सफल रहे। ज्यादातर एग्जिट पोल भाजपा को 2014 के मुकाबले ज्यादा सीटें मिलने, एनडीए को 300 से ज्यादा सीटें हासिल होने का अनुमान जता रहे थे। कुछ एग्जिट पोल्स के अनुमान भाजपा को वास्तव में मिली सीटों से काफी कम सीटें मिलने की भविष्यवाणी करते नजर आए, जो वास्तविक नतीजों में गलत साबित हुए। चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों और वास्तविक नतीजों में यह चौंकाने वाला अंतर संभवतः सात चरणों वाले चुनाव में जनता के बदले रूझान और विपक्षी दलों के खिलाफ जनता की नाराजगी को सर्वे के जरिए ठीक से समझ नहीं पाने की वजह से हुई। कमोबेश जो हाल विपक्षी दलों के नेताओं और रणनीतिकारों का हुआ, वही चुनाव पूर्व सवेक्षणों और उनके विश्लेषणों का भी हुआ।

क्या कह रहे थे चुनाव पूर्व सर्वेक्षण

ज्यादातर चुनाव पूर्व सर्वेक्षण यह संकेत कर रहे थे कि इस बार घट सकता है प्रधानमंत्र नरेंद्र मोदी का जादू, 2014 जैसा बहुमत मिलने के आसार कम हैं। सात चरणों में होने वाले 2019 के लोकसभा चुनाव में पहले चरण का प्रचार खत्म होने से ठीक पहले कुछ सर्वे आए, जिनमें अनुमान जताया गया कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अगुवाई वाली एनडीए सरकार को 2014 में मिले प्रचंड बहुमत से कुछ कम सीटें मिल सकती हैं। ये सर्वे प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस का चुनाव घोषणा पत्र जारी होने के बाद और भाजपा के संकल्प पत्र के लोकार्पण से पहले किए गए थे।

यानि इस दौरान कांग्रेस ने हर गरीब परिवार को सालाना 72 हजार रुपए देने का बड़ा चुनावी वादा देश की जनता से कर दिया था। इन चारो सर्वे में सीएनएक्स के सर्वे में एनडीए को सर्वाधिक 295 सीटें और वीएमआर के सर्वे में यूपीए को सर्वाधिक 149 सीटें मिलने का दावा किया जा रहा था।

सी वोटर के सर्वे के मुताबिक	
एनडीए	267
यूपीए	142
अन्य	134

सीएसडीएस और लोकनीति के सर्वे के मुताबिक	
एनडीए	263-283
यूपीए	115-135
अन्य	135 से 155

सीएनएक्स के सर्वे के मुताबिक	
एनडीए	295
यूपीए	127
अन्य	121

वीएमआरके सर्वे के मुताबिक	
एनडीए	279

यूपीए	149
अन्य	115

एग्जिट पोल्स ने बताया कायम रहेगी मोदी सरकार

2019 के लोकसभा चुनाव के आखिरी चरण का मतदान खत्म होते ही ज्यादातर एग्जिट पोल्स ने भविष्यवाणी की कि नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए सत्ता में बना रहेगा। अलग अलग एग्जिट पोल ने एनडीए को मिलने वाली सीटों की संख्या अलग अलग बताई थी। कई एग्जिट पोल में उप्र में सपा-बसपा-रालोद महागठबंधन को भाजपा से ज्यादा सीट मिलने का अनुमान बताया था। यह भी अनुमान जताया गया कि 2014 में खुद 80 में से 71 सीट जीतने वाली भाजपा और उसके सहयोगी अपना दल की दो सीटें मिलाकर एनडीए की कुल 73 सीटों के बजाय 2019 में आधी सीटें भी नहीं जीत पाएगी।

किस एग्जिट पोल ने किसको कितनी सीटें दीं

	एनडीए	यूपीए	अन्य
टाइम्स नाउ	306	132	104
इंडिया न्यूज	298	118	127
रिपब्लिक	295-315	122-125	102-125
सी वोटरः	287	128	127
जन की बातः (महागठबंधन 26)	305	124	87
नेता-न्यूज एक्स	242	164	136

न्यूज 18-आईपीएसओएस	336	82	124
एबीपी:नील्सन-(भाजपा 218, कांग्रेस 81)	267	127	148
इंडिया टुडे-एक्सिस माय इंडिया	339-365	77-108	69-95

उप्र एग्जिट पोल्स

लोकसभा चुनाव 2019 में एग्जिट पोल में उप्र के लिए अलग से भी नतीजों का पूर्वानुमान बताया गया था। केंद्र में सत्ता में आने या बरकरार रहने में उप्र की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। हर पोल में अलग-अलग संख्या का अनुमान बताया गया था।

	एनडीए	महागठबंधन	यूपीए/ अन्य
एबीपी-सीएसडीएस	22	56	2
रिपब्लिक: सी वोटर	38	40	2
रिपब्लिक: जन की बात	46-57	21-32	2-4
टाइम्स नाउ: वीएमआर	58	20	2
न्यूज 18: आईपीएसओएस	60-62	17-19	1
न्यूज एक्स: नेता-	33	42	5

एनडीटीवी पोल ऑफ पोल्स

11 अप्रैल से 19 मई 2019 के बीच सात चरणों में हुए लोकसभा चुनाव 2019 के आखिरी चरण के मतदान के बाद 19 मई को कई न्यूज चैनल्स ने एग्जिट पोल में नतीजों के पूर्वानुमान दिखाए। मतगणना की तारीख 23 मई से पांच दिन पहले आए विभिन्न एग्जिट पोल्स के अलावा एनडीटीवी ने ऐसे सभी पोल्स का भी पोल यानी औसत निकालकर कार्यक्रम प्रसारित किया।इसमें भाजपा के नेतृत्व वाले एनडीए को 302, कांग्रेस के नेतृत्व वाले यूपीए को 122+ और अन्य को 118+ सीटें मिलने का पूर्वानुमान बताया गया।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सिर्फ वाराणसी से और प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस के अध्यक्ष राहुल गांधी केरल की वायनाड़ और यूपी के अमेठी से चुनाव मैदान थे। कुल 542 में से 420 सीटों पर चुनाव में उतरी भाजपा अध्यक्ष अमित शाह ने 300 से ज्यादा सीटें जीतने का दावा करते हुए कहा था कि इस बार भी एनडीए की सरकार बनेगी। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने ऐसा कोई दावा नहीं किया।

इस चुनाव में अब तक के चुनावों में सर्वाधिक प्रतिशत मतदान हुआ। पहले चरण में 11 अप्रैल को 69.43% वोटिंग हुई थी, 18 अप्रैल को दूसरे चरण और 23 अप्रैल को हुए तीसरे चरण के चुनाव में लगभग 66 फीसदी मतदान हुआ था। जबकि 29 अप्रैल को चौथे चरण की वोटिंग 64 फीसदी और12 मई को हुए छठवें चरण में

57.33 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने मताधिकार का इस्तेमाल किया। पहले चरण में 11 अप्रैल को 20 राज्यों की 91 सीटों पर मतदान हुआ, दूसरे चरण में 18 अप्रैल को 13 राज्यों की 97 सीटों पर वोट डाले गए। तीसरे चरण में 23 अप्रैल को 14 राज्यों की 115 सीटों, चौथे चरण में 29 अप्रैल को 9 राज्यों की 71 सीटों, पांचवें चरण में 6 मई को 7 राज्यों की 51 सीटों, छठे चरण में 12 मई को 7 राज्यों की 59 सीटों और सातवें व आखिरी चरण में 19 मई को 59 सीटों पर वोटिंग हुई।

ई-चुनाव में एनडीए 300 पार पहुंचने का दावा-

एग्जिट पोल्स के अलावा आजतक ने ई चुनाव भी कराया यानी अलग तरह का एग्जिट पोल। इसमें भाजपा और उसके सहयोगी दलों को 326 सीटें मिलने का पूर्वानुमान बताया गया। कांग्रेस व उसके सहयोगी दलों को 112 सीटों पर थमने की भविष्यवाणी की गई। चैनल ने दावा किया कि अन्य दलों को ई वोटर्स ने-105 सीटें दी। इस पोल में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए की फिर से सरकार बनने का निष्कर्ष दिखाया गया।

आजतक तक ने दावा किया कि उनके ई-चुनाव का यह आंकड़ा लगभग एग्जिट पोल जैसा ही है। आजतक-एक्सिस माई इंडिया के एग्जिट पोल में एनडीए को 339-365 सीटें मिलने का अनुमान लगाया गया। जबकि आजतक के ई-चुनाव में जनता ने एनडीए को 326 सीटें दी गईं, यह संख्या पूर्ण बहुमत से काफी ज्यादा है. यानी

एग्जिट पोल के अनुमान पर ई-चुनाव में भी मुहर लग गई। आज तक ने जनता को इंटरनेट के जरिए वोटिंग का मौका दिया था। इसमें मतदाता होना जरूरी नहीं था, यह एग्जिट पोल से भिन्न सर्वेक्षण था। यह ई-चुनाव मतदान की चुनाव पहले चरण के मतदान तारीख के 27 दिन पहले 15 मार्च को शुरू हुआ था और मतदान के आखिरी चरण 19 मई शाम 5 बजे तक इसके लिए वोटिंग की गई थी। चौनल ने बताया कि इस ई-चुनाव में सभी 543 लोकसभा सीटों पर 269, 412 वोटरों ने हिस्सा लिया है। इस तरह वास्तविक मतदान के एग्जिट पोल में जहां भाजपा लीड करती दिखाई दे रही थी, इंटरनेट के जरिए हुई वोटिंग में भी मोदी का जादू चलता दिखाई दे रहा था। इसकी पुष्टि 23 मई को आए वास्तविक नतीजों में भी हुई। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा ने 300 से ज्यादा सीटें हासिल की और एनडीए को अभूतपूर्व बहुमत हसिल हुआ। मोदी फिर प्रधानमंत्री बने।

एग्जिट पोल कैसे किए जाते हैं और कितने सही

मतदान के आख़िरी दिन वोटिंग की प्रक्रिया खत्म होने के आधे घंटे के भीतर तमाम न्यूज़ चैनलों पर एग्ज़िट पोल दिखाए जाने लगते हैं।दरअसल, ये एग्ज़िट पोल आने वाले चुनावी नतीजों का एक अनुमान होता है और बताता है कि मतदाताओं का रुझान किस पार्टी या गठगबंधन की ओर जा सकता है।न्यूज़ चैनल तमाम सर्वे एजेसियों के साथ मिलकर ये कराते हैं।ये सर्वे कई बार नतीजों से

बिल्कुल मेल खाते हैं तो कभी उनके उलट होते हैं।ऐसे में हमने एग्ज़िट पोल की पूरी प्रक्रिया समझने की कोशिश की।सीएसडीएस के निदेशक संजय कुमार कहते हैं कि एग्जिट पोल को लेकर जो धारणा है वो है ये कि मतदाता जो वोट देकर पोलिंग बूथ से बाहर निकलते हैं उनसे बात की जाती है। सर्वे में कई सवाल मतदाता से पूछे जाते हैं लेकिन उनमें सबसे अहम सवाल होता है कि आपने वोट किसे दिया है। हज़ारों वोटर्स से इंटरव्यू करके आंकड़े जुटाए जाते हैं। इन आंकड़ों का विश्लेषण करके ये वोटिंग का अनुमान निकालते हैं यानी ये पता लगाते हैं कि इस पार्टी को कितने प्रतिशत वोटरों ने वोट किया है। एग्जिट पोल करने, आंकड़े जुटाने और उन आंकड़ों का विश्लेषण कर पूर्वानुमान व्यक्त करने तक लंबी मेहनत और प्रक्रिया होती है। ऐसा नहीं है कि हर बार एग्जिट पोल सही ही साबित हुए हैं। इसका सबसे एक उदाहरण है 2015 का बिहार विधानसभा चुनाव। सन 2015 में हुए बिहार विधानसभा चुनावों के बाद एग्जिट पोल में भाजपा के बंपर जीत का अनुमान लगाया गया था। पोलिंग एजेंसी चाणक्य ने भाजपा को 155 और महागठबंधन को महज 83 सीटों पर जीत की भविष्यवाणी की थी।

नीलसन और सिसरो ने 100 सीटों पर भाजपा की जीत का अनुमान लगाया था लेकिन नतीजे बिल्कुल विपरीत रहे थे। जनता दल यूनाइटेड, राष्ट्रीय जनता दल और कांग्रेस के महागठबंधन ने कुल 243 सीटों में से 178 पर जीत हासिल की थी। यह बड़ी जीत थी और एग्जिट

पोल और असल नतीजों में काफी अंतर देखने को मिला था।

2018 में मप्र-राजस्थान में सही साबित हुए एग्जिट पोल

मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में दिसंबर 2018 में चुनाव नतीजे आए। तीनों राज्यों में कांग्रेस ने सरकार बनाई। तीन प्रमुख न्यूज़ चैनल्स- 'इंडिया टुडे-आज तक', रिपब्लिक टीवी और एबीपी के अपने-अपने एग्जिट पोल में कांग्रेस को मध्य प्रदेश में जीतता दिखाया गया। इन तीनों न्यूज़ चैनल्स ने क्रमश: एक्सिस इंडिया, सी-वोटर और सीएसडीएस से अपने अपने सर्वेक्षण कराए।

छग के बारे में एग्जिट पोल फेल

छत्तीसगढ़ के एग्जिट पोल के आकलन उलझे हुए दिखाए गए। ज़्यादातर चैनलों के एग्ज़िट पोल मान रहे थे कि चुनाव नतीजे से छत्तीसगढ़ में त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति सामने आएगी।सिर्फ एबीपी न्यूज़ और इंडिया टीवी के सर्वेक्षण बता रहे थे कि छत्तीसगढ़ में भाजपा लगातार चौथी बार सत्ता में आएगी और उसे कामचलाऊ बहुमत मिल जाएगा। एग्जिट पोल पर 'इंडिया टुडे-आज तक' और 'रिपब्लिक टीवी' जैसे चैनल छत्तीसगढ़ में भी कांग्रेस की बढ़त की भविष्यवाणी की थी।

2017 में गुजरात विस चुनाव में सटीक रहे एग्जिट पोल

2017 गुजरात विधानसभा चुनाव में भी नतीजे एग्जिट पोल के रुझान एक जैसे ही थे। हालांकि कांग्रेस और भाजपा की सीटों का अंतर बेहद कम था लेकिन राज्य में भाजपा की ही सरकार बनी। इंडिया न्यूज़-सीएनएक्स के एग्ज़िट पोल में गुजरात में भाजपा को 110 से 120 और कांग्रेस को 65-75 सीटें मिलने का अनुमान जताया गया था।

टाइम्स नाऊ-वीएमआर के एग्ज़िट पोल में भाजपा को 115 और कांग्रेस को 65 सीटें मिलती दिखाई गईं।न्यूज़ 18-सी वोटर के एग्ज़िट पोल में भाजपा को 108 और कांग्रेस को 74 सीटें का अनुमान लगाया गया। इंडिया टुडे-माय एक्सिस ने भाजपा को 99 से 113 और कांग्रेस को 68 से 82 सीटों का अनुमान दिया। न्यूज़ 24- चाणक्य ने भाजपा को 135 और कांग्रेस को 47 सीटों का अनुमान जताया।

साल 2016 में पश्चिम बंगाल का चुनाव

इस चुनाव के असल नतीजे एग्जिट पोल के काफ़ी क़रीब रहे थे। चाणक्य के एग्जिट पोल में ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस के 210 सीटों पर जीत के अनुमान लगाए थे। जबकि इंडिया टुडे-एक्सिस ने यह संख्या 243 बताई थी। ये सारे अनुमान सरकार बनाने के आवश्क आंकड़ों से अधिक थे और कमोबेश ये सही भी साबित हुए। ममता

बनर्जी की पार्टी ने 211 सीटों पर जीत हासिल की थी। हालांकि सारे अनुमान दूसरे नंबर पर रही पार्टी के मामले में ग़लत साबित हुए। एग्ज़िट पोल्स यह सटीक अनुमान नहीं लगा पाए कि उपविजेता कितनी सीटें जीतेगा।इंडिया टुडे-एक्सिस को छोड़कर सभी एग्जिट पोल वाम दलों और कांग्रेस को 100 से अधिक सीट दे रहे थे, लेकिन असल नतीजों में वामपंथी दलों और कांग्रेस को महज़ 44 सीटें मिली थीं। साल 2017 में उत्तर प्रदेश में हुए विधानसभा चुनावों के बाद लगभग सभी एग्ज़िट पोल में भाजपा की जीत के प्रबल अनुमान लगाए गए थे. और नतीजे भी ऐसे ही रहे।

ये भी हालात बने: बड़ी पार्टी की नहीं बनी सरकार

कर्नाटक में हुए विधानसभा चुनाव के असल परिणाम के कुछ महीने पहले कई राजनीतिक वैज्ञानिकों ने तर्क दिया था कि विजेता की भविष्यवाणी के हिसाब से यह चुनाव सबसे कठिन था। एबीपी-सी वोटर ने 110 सीटों पर भाजपा के जीत के अनुमान लगाए थे, जबकि 88 सीटों पर कांग्रेस की जीत की भविष्यवाणी की गई थी। दूसरी तरफ इंडिया टुडे-एक्सिस के एग्ज़िट पोल में 85 पर भाजपा और 111 सीटों पर जेडीएस-कांग्रेस गठबंधन के जीत के अनुमान लगाए गए थे। हालांकि चुनावों के असल परिणाम अलग रहे। इसमें भाजपा को उम्मीद से अधिक सफलता मिली थी। भाजपा 100 से ज़्यादा सीटों पर जीत का परचम लहराने में कामयाब रही थी, हालांकि वो सरकार नहीं बना

पाई। चुनाव परिणाम के बाद कांग्रेस और जनता दल (एस) गठबंधन की सरकार बनी। प्रत्येक चुनाव परिणाम का सटीक अनुमान लगाना बेहद मुश्किल होता है।

2015 के बिहार चुनाव में ज्यादातर एग्जिट पोल के अनुमान गलत साबित हुए थे नीलसन और सिसरो ने 100 सीटों पर भाजपा की जीत का अनुमान लगाया था लेकिन नतीजे बिल्कुल विपरीत रहे थे। जनता दल यूनाइटेड, राष्ट्रीय जनता दल और कांग्रेस के महागठबंधन ने कुल 243 सीटों में से 178 पर जीत हासिल की थी। यह बड़ी जीत थी और एग्जिट पोल और असल नतीजों में काफी अंतर देखने को मिला था। आखिर एग्जिट पोल बड़े स्तर गलत कैसे हो जाते हैं? इस सवाल पर संजय कहते हैं, "एग्जिट पोल के असफल होने का सबसे सटीक उदाहरण है 2004 का लोकसभा चुनाव। इस चुनाव में एग्जिट पोल के आंकड़े गलत साबित हुए। एग्जिट पोल में कहा जा रहा था कि भाजपा सबसे बड़ी पार्टी बनेगी और एनडीए सबसे बड़ा गठबंधन बनकर उभरेगा, लेकिन नतीजे हम सबको पता हैं। कांग्रेस की सीटें अधिक आईं और यूपीए सबसे बड़ा गठबंधन साबित हुआ।

दरअसल एग्जिट पोल में हम पोलिंग बूथ से निकल कर बाहर आए मतदाताओं से बात करते हैं। ऐसे में जो मतदाता मुखर होता है वह ज्यादा बातें करता है। यह माना जाता है कि भाजपा का मतदाता ज़्यादातर शहरी, ऊंचे तबके का, पढ़ा-लिखा, युवा होता है। यह वर्ग सोशल कॉन्फिडेंस वाले लोग खुद आकर अपनी बात रखता है।

जबकि गरीब, अनपढ़ और कम अत्मविश्वास वाला मतदाता चुपचाप वोट देकर चला जाता है। उसकी सर्वे करने वालों तक खुद जाने की संभावना कम होती है ऐसे में सर्वे करने वालों को ये ख्याल रखना ज़रूरी होता है कि वह हर तबके के मतदाताओं से बात करे। मतदान को गुप्तदान कहा जाता है, ऐसे में मतदाताओं से ये जान पाना कि वो किसे वोट देंगे ये भी एक चुनौती होती है। कई बार वो सच बता रहे हैं या नहीं इस पर भी संशय होता है। लेकिन संजय कुमार इससे इत्तेफ़ाक नहीं रखते वे कहते हैं कि ज़्यादातर मतदाता सच बोलते हैं। ये हो सकता है कि कोई मतदाता झूठ बोल दे, मजाक कर दे लेकिन मैं नहीं मानता कि जब किसी वोटर हम जाकर बात करते हैं तो उसे झूठ बोलने में कोई आनंद आता है। मतदाता ने सच बोला या झूठ इसका फ़ैसला चुनाव नतीजों के बाद साफ़ हो जाता है। अगर आप पिछ्ले 10-15 सालों के एग्जिट पोल को देखेंगे तो करीब-करीब सभी एग्जिट पोल के अनुमान नतीजों के आगे-पीछे ही आए। इस मायने में एग्जिट पोल असल नतीजों का सही अंदाजा ज्यादा बेहतर बता पाने वाले साबित होते रहे हैं।

अध्याय 8
विशेषज्ञों की राय

क्या कहते हैं चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और विश्लेषण के माहिर

एक इंटरव्यु में सीएसडीएस के निदेशक संजय कुमार कहते हैं कि एग्जिट पोल को लेकर जो धारणा है वह यहहै कि मतदाता जो वोट देकर पोलिंग बूथ से बाहर निकलते हैं उनसे बात की जाती है। सर्वे में कई सवाल मतदाता से पूछे जाते हैं लेकिन उनमें सबसे अहम सवाल होता है कि आपने वोट किसे दिया है। हज़ारों मतदाताओं से इंटरव्यू करके आंकड़े जुटाए जाते हैं, इन आंकड़ों का विश्लेषण करके ये वोटिंग का अनुमान निकालते हैं यानी ये पता लगाते हैं कि इस पार्टी को कितने प्रतिशत वोटरों ने वोट किया है। एग्जिट पोल करने, आंकड़े जुटाने और उन आंकड़ों को का विश्लेषण कर पूर्वानुमान जताने तकलंबी मेहनत और प्रक्रिया होती है। संजय कुमार मानते हैं कि कभी कभी एग्जिट पोल गलत होते हैं लेकिन इन्हें ऐसे समझना चाहिए कि अगर नतीजों में एग्जिट पोल में बताई गई सीटों की संख्या असल नतीजे में सटीक नहीं आईं लेकिन रुझान उसी ओर आया तो उसे गलत नहीं कहना चाहिए बल्कि वह भी सही एग्जिट पोल ही होता है।

ऐसा नहीं है कि हर बार एग्जिट पोल सही ही साबित हुए हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है 2015 का

बिहार विधानसभा चुनाव। इसमें मतदान के बाद एग्जिट पोल में भाजपा की बंपर जीत का अनुमान लगाया गया था। पोलिंग एजेंसी चाणक्य ने भाजपा को 155 और महागठबंधन को महज 83 सीटों पर जीत की भविष्यवाणी की थी। नतीजे इसके उलट आए और राष्ट्रीय जनता दल के नेतृत्व वाले महागठबंधन की सरकार बनी, भाजपा को विपक्ष में बैठना पड़ा।

अंग्रेजी अखबार इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित एकइंटरव्यु में सेफालॉजिस्ट योगेंद्र यादव के मुताबिक सर्वेक्षण की टाइमिंग यानी जिस वक्त वो किए गए हैं, के अलावा सैंपल का आकार, डिजाइन और सैँपल का सभी वर्गों का प्रतिनिधित्वकारी होना पूर्वानुमान के सटीक होने को सुनिश्चित करते हैं। सर्वे करने के तरीके का चुनाव, सैंपल तैयार और आंकड़ें जुटाने वाले सर्वेक्षणकर्ताओं की ट्रेनिंग सर्वेक्षण की सटीकता के लिए आवश्यक हैं। सैंपल तय करने में मतदाता सूची से रैंडम आधार पर चयन अच्छा तरीका होता है। दूसरी तरफ एग्जिट पोल में सैंपल कोटा आधारित होता है, इसमें मतदाताओं के सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व मिलने की पक्की गारंटी नहीं हो पाती। कोटा सैंपल में मतदाताओं की एक संख्या तय कर उसमें अलग अलग वर्गों के मतदाताओं की संख्या तय संख्या से इंटरव्यु किया जाता है। भारत के संदर्भ में चुनाव सर्वेक्षण में सैंपल का अरकार पर्याप्त होता है और लेकिन सैंपल का आकार बड़ा होना सर्वेक्षण के सटीक होने के लिए जरूरी नहीं है, सही तरह से चुना और डिजाइन किया गया

अपेक्षाकृत सैंपल भी सटीक पूर्वानुमान बताने के लिए सही हो सकता है। बड़े सैंपल के आधार पर किए गए सर्वेक्षण पूर्वानुमान भी कई बार गलत साबित हो जाते हैं।

देश में दो तरह के विचार हैं। पहला यह कि चुनाव पूर्व सर्वेक्षण चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, जबकि दूसरा विचार इसका समर्थन नहीं करता। इसके मुताबिक ऐसा कोई शोध नहीं है जो यह साबित करता हो कि ओपिनियन पोल या चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के प्रकाशित निष्कर्ष चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।मतदाता समझदार होते हैं और वे राजनीतिक रूप से भी विचारशील होते हैं। चुनाव पूर्व सर्वेक्षण के नतीजे जानने का अधिकार मतदाताओं को है और ऐसे सर्वेक्षण चुनाव प्रक्रिया का हिस्सा हैं।

एक इंटरव्यु में वरिष्ठ पत्रकार विनोद मेहता मानते हैं कि एग्जिट पोल और चुनाव पूर्व सवेक्षण चुनाव को प्रभावित करते हैं, खासकर तब जब चुनाव प्रक्रिया जारी हो। दिवंगत वरिष्ठ पत्रकार खुशवंत सिंह ने एक साक्षात्कार में 1999 में कहा था कि यह मीडिया की खुद की जिम्मेदारी है कि वह उसकी विश्वसनीयता प्रभावित न हो।

अध्याय 9

निष्पत्ति

लोकतंत्र भारतीय जनमानस की अंतस चेतना में गहरे प्रस्थापित है। यह हमारी बातचीत से लेकर मनोमस्तिष्क में मौजूद है, जो कभी कभी अपने श्रेष्ठ रूप में तो कभी अपने सबसे खराब रूप में प्रकट होता है। जब भी लोकतंत्र पर संकट आता है हमारे देश का मतदाता चुनाव में उसका जोरदार ढंग से मुकाबला कर लोकतंत्र को और सशक्त बना देता है। यह अब स्थापित तथ्य है कि भारतीय मतदाता राजनेताओं से आगे की सोच रखता है और उनके मंसूबों को ध्वस्त भी कर देता है। इतना ही नहीं वह उन्हें लोक तंत्र का पाठ भी पढ़ा देता है और सजा भी देता है। हम कह सकते हैं कि भारतीय लोकतंत्र की आत्मा आम मतदाता है, राजनेता नहीं। जनतंत्र में जन और जनमत ही महत्वपूर्ण है। भारत में लोकसभा के पहले आम चुनाव से 17 वीं लोकसभा के लिए सन 2019 में संपन्न हुए चुनाव के बीच मतदाताओं की तादाद पांच गुना बढ़ चुकी है और इतना ही इजाफा मतदान केंद्रों की संख्या में भी हुआ है। पहला चुनाव 1952 में हुआ तब मतदाता संख्या करीब 18 करोड़ थी और मतदान केंद्र दो लाख थे। बीते लोकसभा चुनाव 2019 में मतदाता 90 करोड़ और मतदान केंद्र करीब 10 लाख थे। इस दौरान 390 से ज्यादा बार विधानसभा चुनाव और 17 लोकसभा चुनाव हो

चुकेहैं।ठप्पा लगाकर मतदान और कई दिनों तक चलने वाली मतों की गिनती के दौर से हमारा लोकतंत्र इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन से मतदान और उसमें भी उस ने जिसे वोट दिया है, उसकी पर्ची देखने को मिलने के सिस्टम वीवीपैट का दौर आ चुका है। हालांकि कुछ राजनीतिक दल ईवीएम से मतदान के खिलाफ समय समय पर मुहिम चलाकर ठप्पे का मतदान फिर लागू करने की मांग करते रहते हैं लेकिन देश का मतदाता नई प्रणाली को पूरी तरह स्वीकार कर चुका है। बीते करीब दशकों के दौरान मतदाता बने शहरी युवा नागरिक तो ठप्पा लगाने वाले मतदान सिस्टम से अपरिचत ही हैं। ग्रामीण क्षेत्र में अब भी कुछ चुनाव सील लगाकर मतदान के जरिए कराए जाते हैं। देश में मतदाताओं की तादाद पांच गुना होने और चुनाव में उम्मीदवारों की तादाद भी बढ़ जाने के दौर में चुनाव पूर्व और चुनाव के दौरान जनमत सर्वेक्षणों के काम में भी तेजी से बदलाव और सुधार आया है। हालांकि इन सर्वेक्षणों का सिलसिला पहले चुनाव के बजाय तीसरे और चौथे लोकसभा चुनाव से आरंभ हुआ। जो अब चुनाव प्रक्रिया का स्थाई अंग बन गया है।

एंटी-इंकवैंसी बनाम प्रो-इंकवैंसी फिर चर्चा में

चुनाव की चर्चा, रिपोर्टिंग की तरह सर्वेक्षण में भी सर्वाधिक चर्चा जिस आधार की होती है, उसे एंटी- इंकवैंसी कहा जाता है, यानी मौजूदा सरकारों के कामकाज के प्रति मतदाताओं में असंतोष। यह फैक्टर इतना कॉमन मान

लिया गया है कि इसे सर्वाधिक प्रभावी कारक और स्वाभाविक मान लिया गयाहै। हालांकि मतदाताओं के लिहाज से और चुनावी सर्वेक्षणों के लिहाज से यह पूरी तरह सच नहीं है। अब तक के चुनावी इतिहास में पश्चिम और योरोप के देशों में एंटी-इंकवैंसी जैसा कोई फैक्टर चुनाव के दौरान नहीं होता और न ही उसकी चर्चा ही होती है। प्रणव रॉय और दोराब आर. सोपारीवाला की किताब- द वर्डिक्ट- के मुताबिक विश्व के सबसे पुराने लोकतांत्रिक देश अमेरिका में बीते करीब सात दशक में सत्ताधारी दल की सत्ता में वापसी का प्रतिशत 64 से 88 फीसदी तक रहा है।

भारतीय लोकतांत्रिक सिस्टम और चुनावों में देखें तो अब तक के सभी चुनावों के संपूर्ण कालखंड को दो भागों में बांटा जा सकता है। पहला प्रो इंकवैंसी यानी एंटी-इंकवैंसी का अभाव यानी तत्कालीन सरकारों और सत्ताधारी दलों को ही बहुमत मिलते रहने के चुनाव यानी एक ही दल को जनता से सत्ता का अधिकार हासिल होने का कालखंड। इसे हम 1952 के पहले चुनाव से लेकर 1971 तक के चुनाव तक देखते हैं। लगभग सभी राज्यों और केंद्र में एक ही दल कांग्रेस की बार बार सरकारें बनती रही थीं। यानी जनता कांग्रेस और उसकी सरकारों और उस वक्त के नेताओं को स्वीकार्यता प्रदान कर रही थी। तब केंद्र में सत्ताधारी दल की सत्ता में वापसी 82 फीसदी तक होती थी और राज्यों में यह प्रतिशत 91 तक औसत पर रहा। केंद्र और राज्यों में भी उस वक्त जो नेता थे, उनकी छवि और जनता में उनको पसंद किए जाने का आंकड़ा खासा ऊपर था और उनके

खिलाफ चुनाव लड़ने वाले नेताओं कोकरारी हार का सामना करना पड़ता था।

सन 1977 के चुनाव में पहली दफा एंटी-इंकंवैंसी यानी सरकार और सत्ताधारी दल के खिलाफ नाराजी प्रखरता से सामने आई और सरकार पलट गई, न केवल केंद्र की बल्कि राज्य सरकारें भी बदल दी गईं। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को भी करारी हार का सामना करना पड़ा। इसके बाद के ज्यादातर चुनाव एंटी-इंकवैंसी के आधार पर ही निर्णय वाले बनकर सामने आते रहे। अगर उसी दल की सरकार आई तो भी वह कमजोर जनमत लेकर और अन्य दलों के समर्थन की बैसाखियों पर रही। मसलन 1991 में कांग्रेस की सरकार बनी तो लेकिन अल्पमत की थी। इसी तरह 2004 की तरह 2009 में कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी लेकिन वह भी अल्पमत वाली ही थी और उसे कई ऐसे दलों से भी समर्थन लेना पड़ा जिनके खिलाफ पार्टी ने चुनाव लड़ा था। सन 2014 में भाजपा के नेतृत्व में एनडीए की सरकार बनी और सन 2019 में भी उसकी और ज्यादा बहुमत से वापसी हुई। यानी एक तरह से प्रो-इंकंवैंसी की भारतीय लोकतंत्र में वापसी हुई।

सन 2014 में प्रधानमंत्री पद के दावेदार गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री भाजपा नेता नरेंद्र मोदी को तूफानी बहुमत मिला जो पांच साल उनके प्रधानमंत्री रहते सन 2019 के आम चुनाव में प्रचंड बहुमत में बदल गया। लेकिन इससे करीब छह माह पहले कांग्रेस ने तीन प्रमुख राज्यों मध्यप्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में भाजपा को

तीन दशक से जारी सत्ता और प्रो-इंकंवेंसी वाली जीत से उतार कर एंटी-इंकंवेंसी के आधार पर फतह हासिल की। यह विश्लेषण करने का बिंदु है कि इन राज्यों में करीब छह महीने बाद ही उन्हीं मतदाताओं ने केंद्र सरकार के प्रति प्रो-इंकवेंसी प्रदर्शित की। राज्य और केंद्र की सरकार के लिए अलग अलग तरह से मतदान के लिहाज से भी भारतीय चुनाव सन 1977 के पहले और बाद में भिन्न तरह से मतदाताओं के व्यवहार को दर्शाते हैं। यह भी भारतीय लोकतंत्र के और ज्यादा परिपक्व होने के तौर पर समझा जा सकता है।

संदर्भ सूची

- समाचार पत्र राष्ट्रीय सहारा के शनिवारीय विशेषांक हस्तक्षेप 20 अप्रैल 1996 और 18 मई 1996 के अंक
- इंडिया टुडे पत्रिका का 30 अप्रैल 1996 का अंक
- पाक्षिक न्यूज मैग्जीन फ्रंटलाइन का 31 मई 1996 का अंक
- साप्ताहिक समाचार पत्रिका आउटलुक का 22 मई 1996 का अंक
- रवींद्रनाथ मुखर्जी की पुस्तक- सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी
- डा. एन. भास्कर राव की पुस्तक- पोल सर्वेस इन मीडिया
- प्रणव रॉय और दोराब आर. सोपारीवाला की किताब द वर्डिक्ट
- सीएसडीएस की विभिन्न रिपोर्ट्स
- इंडियन एक्सप्रेस, टाइम्स ऑफ इंडिया, द हिंदू और विभिन्न चैनलों की बेवसाइट पर उपलब्ध जानकारी
- आज तक, स्टार न्यूज, इंडिया टीवी समेत, दूरदर्शन एवं अन्य समाचार चैनलों और टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स, दैनिक भास्कर तथा अन्य समाचार पत्र पत्रिकाओं में 1998 से 2019 तक के चुनावों में प्रसारित पोल सर्वेक्षण एवं एग्जिट पोल्स के नतीजे
- चुनाव आयोग के आधिकारिक चुनावी आंकड़े एवं जानकारियां

सतीश एलिया

जन्मः 15 अक्टूबर, 1968 गंजबासौदा, जिला विदिशा, मध्यप्रदेश

शिक्षाः गणित में पीजी करते-करते माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के प्रथम बैच में पत्रकारिता एवंजनसंचार में स्नातक, फिर हिंदी साहित्य मेंस्नातकोत्तर, पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नातकोत्तर और फिर एलएलबी।

उल्लेखनीयः करीब डेढ़ दशक तक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय में अतिथि शिक्षक के रूप में पत्रकारिता की स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्यापन।

आकाशवाणी भोपाल में एक दशक तक कंपीयरिंग। दूरदर्शन भोपाल क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय न्यूज चैनलों ई.टीवी, न्यूज 18, इंडिया न्यूज, जी न्यूज, सहारा समय, न्यूजवर्ल्ड, इंडिया फर्स्टश् न्यूज नेशन आदि पर विभिन्न कार्यक्रमों, बहस मुबाहिसों में समय समय पर शिरकत।

मप्र विधानसभा की प्रेस दीर्घा सलाहकार समिति, मप्र शासन की राज्य स्तरी पत्रकार अधिमान्यता समिति, पत्रकार कल्याण समिति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय की प्रश्नपत्र नियोजन सलाहकार समिति के सदस्य रहे।

जीविकाः 28 बरस से सक्रिय पत्रकारिता में। इस दौरान देशबंधु, दैनिक नईदुनिया, नवभारत और दैनिक भास्कर में रिपोर्टर से स्टेट ब्यूरो चीफ तक रहे और इसके बाद राजस्थान पत्रिका समूह के मप्र में अखबार **पत्रिका** में एसोसिएट स्टेट एडिटर। संप्रति राष्ट्रीय दैनिक हरिभूमि के मप्र में राजनीतिक संपादक।

प्रमुख सम्मानः श्रेष्ठ पत्रकारिता के लिए वर्ष 2014 में मप्र सरकार का शरद जोशी सम्मान (वर्ष 2008 के लिए), वर्ष 2014 में जनपरिषद का श्रेष्ठ पत्रकारिता सम्मान, वर्ष 2012 में श्रेष्ठ संसदीय रिपोर्टिंग के लिए पं. कुंजीलालदुबे राष्ट्रीय संसदीय विद्यापीठ का सम्मान, वर्ष 2011 में उत्कृष्ट पत्रकारिता के लिए माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान का जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी सम्मान, वर्ष

2010 में पं. गंगाप्रसाद पाठक ललित कला न्यास विदिशा का नागरिक अभिनंदन, वर्ष 2006 में मप्र क्रांतिकारी पत्रकार संघ का क्रांतिकारी पत्रकार सम्मान समेत कई अन्य सम्मान।

लेखनः शुरूआत कविता से और फिर गजल से गुजरते हुए व्यंग्य लेखन में रम गए। अखबारी लेखन में खबरों से लेकर विशेष टिप्पणियां विशेष आलेखों और संपादकीय लेखों से अलग पहचान। अब तक दो किताबें प्रकाशित। व्यंग्यसंग्रह **अन्नं ब्रम्ह**। वरिष्ठ पत्रकार कीर्तिशेष भुवनभूषण देवलिया पर केद्रिंत पुस्तक- **पत्रकारिता के भूषण का संपादन**। अब तक की तीसरी पुस्तक।

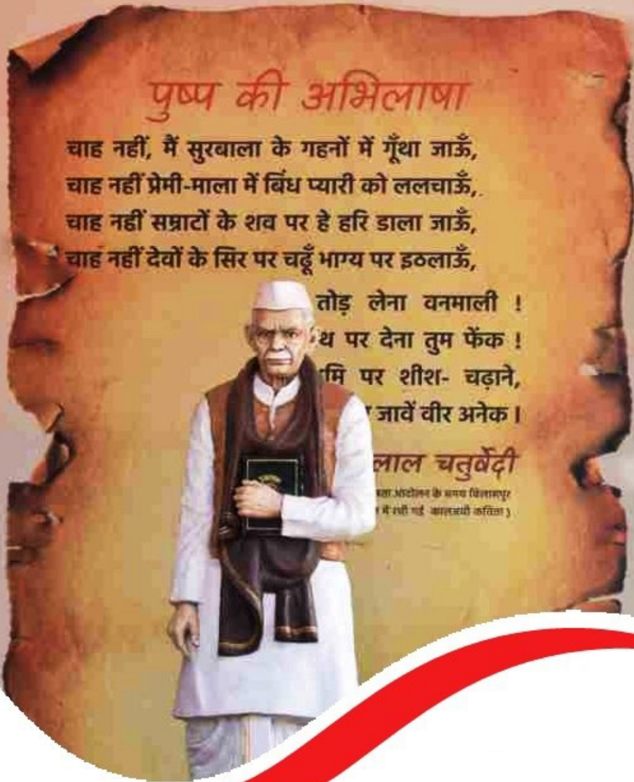

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल